

सम्राट् हर्ष

शंकर बाम

दो शब्द

श्री शंकर वाम इतिहास पुरुषों पर अनेकानेक पुस्तकें लिख चुके हैं। इतिहास उनका विषय है और इस दिशा में जो उन्होंने दक्षता प्रगट की है उसके प्रमाण में वे अनेक पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक सम्राट् हर्ष भी उसी कड़ी में है और उसे सुबोध कथानक की भाषा में इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि वह बालकों, किशोरों और नव साक्षरों के लिए सहज रुचिकर हो सके। उचित और आवश्यक है यह कि हम राष्ट्र के इतिहास निर्माता पुरुषों के चरित्र से परिचित हों और श्री शकर वाम का उद्यम इस दिशा में सराहनीय है। उत्तरोत्तर विकास हेतु अनेकानेक शुभकामनाओ सहित—

दिल्ली

जैनेन्द्रकुमार

विषय- सूची

क्रमांक	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	खुशी में ज़हर	...	७
२.	पहाड़ टूटा	...	१४
३.	वदला और वदला	...	२२
४.	राजतिलक	...	२६
५.	वहन की खोज	...	३५
६.	दोनों राज़ी	...	४२
७.	मेहमान का स्वागत	...	४६
८.	नालन्दा में	...	५१
९.	सोने में सुहागा	...	५६
१०.	कोई भेद नहीं	...	६०
११.	कमर कस ली	...	६७
१२.	अहिंसा का वल	...	७१
१३.	सच्ची विजय	...	७७
१४.	लड़ाई की ओर	...	८४
१५.	लड़ाई नहीं	...	९०
१६.	अश्रुपूर्ण विदाई	...	१०३
१७.	सर्वस्व का दान	...	१०९

: १ :

खुशी में ज़हर

आज से लगभग १४०० वर्ष पूर्व थानेश्वर में एक राजा राज्य करते थे। उनका नाम प्रभाकरवर्द्धन था। वे बड़े शक्तिशाली थे। उनका वंश पुष्प-भूति के नाम से प्रसिद्ध था। उनके दो लड़के और एक लड़की थी। बड़े लड़के का नाम राज्यवर्द्धन, छोटे का नाम हर्षवर्द्धन और लड़की का नाम राज्यश्री था। उनके दोनों लड़के योग्य, सुशील, योद्धा और पराक्रमी थे। लड़कों की भाँति लड़की भी विदुषी और विनम्र थी। वह नृत्य, संगीत आदि में विशेष रुचि रखती थी। उसका विवाह कन्नौज के राजा गृहवर्मा के साथ हुआ था।

प्रभाकरवर्द्धन बूढ़े हो गये थे। इस कारण उनके दोनों बेटे राज-काज चलाते थे। इन दोनों बेटों में राज्यवर्द्धन तो बिल्कुल साधु स्वभाव का था और उसकी इच्छा सन्यासी हो जाने की थी। लेकिन हर्ष बड़ा बुद्धिमान, तेजस्वी और पराक्रमी युवराज था। वह राज्य के हर काम में बड़ी दिलचस्पी लेता था और हररोज़ नये-नये अनुभव प्राप्त करता था।

उन दिनों भारत पर हूणों के हमले बार-बार हो रहे थे। हूण भेड़िये थे। उन्हें खून का चस्का लग गया था। शान्ति से वे ज़िन्दगी क्योंकर बिताते? वे वंक्षु के किनारे से चलकर भारत को रौंदना चाहते थे। प्रभाकरवर्द्धन के जमाने मे हूणों का यह हमला पंजाब पर हुआ।

यह देख राजा ने अपने दोनों बेटों को वहाँ लड़ने भेजा।



दोनों झट पंजाब जा पहुँचे और उन्होंने हूणों के घोड़े की बाग़ एकाएक सिन्धु नदी के किनारे रोक दी। हर्ष की अपार सेना ने हूण-सेना का तलवारों से स्वागत किया।

अत्याचारी हूणों की राह अब तक दुनिया में कहीं भी नहीं रुकी थी। हिन्दुस्तान में एकाएक अपना रास्ता रुका जान उन्होंने हिन्दुओं की फौज पर भयंकर हमला किया, मगर यह हमला चट्टान पर तलवार चलाने के समान था। तलवार टूट गई। उनके सामने अट्ठारह बरस का वीर युवक उस प्रभाकर-वर्द्धन का बेटा था, जिसने कुछ ही दिनों पहले हूणों के देश को तबाह किया था और उनके घरों में पैठ-पैठ कर उन्हें मारा था। वह भला कैसे बर्दाश्त करता कि वे ही हूण उसकी पवित्र जन्मभूमि पर पाँव रखें। वह थानेश्वर से आँधी की तरह उठा और हूणों की दीवार से सिन्धु के तीर पर जा टकराया। पृथ्वी मानो हिल गई; क्योंकि भारत का वीर बालक संसार की सबसे मजबूत और खूँखार ताकत हूणों के खिलाफ लड़ रहा था।

घमासान युद्ध छिड़ गया। लाशें गिरने लगीं। खून की नदी बह चली। पर कोई थका नहीं। कई दिनों तक देवासुर-सग्राम होता रहा। हर्षवर्द्धन अपनी सेना का हौसला सदा बढ़ाये रखता। ऐसा होता भी क्यों न ? सारी खतरे की जगहों में, लड़ाई की अगली कतार में, सबकी आँखों के सामने हर्षवर्द्धन की तलवार नाचती रहती। उसकी वीरता और निर्भयता देख कर तो कायर के हौंसले भी बढ़ जाते। फिर यहाँ तो उसकी सेना में भारत के चुने हुए वीर थे। स्वयं हर्षवर्द्धन तपस्वी का जीवन बिताता था। लड़ाई के मैदान में रातें उसने जमीन पर सो कर बिताईं। देश की चिन्ता उसकी चिन्ता थी। फिर जब देश के दुश्मन उसके दरवाजों पर हथौड़े की चोट कर रहे थे, तब

वह किस तरह आराम कर सकता था ! मामूली से मामूली सिपाही के साथ उसका भाईचारा था और लड़ाई के मैदान में वह स्वयं को भी एक साधारण सैनिक से अधिक नहीं समझता था ।

यह लड़ाई सचमुच ही देवासुर-संग्राम था । एक ओर तो देवताओं की तरह हिन्दुस्तान के आर्य हिन्दू थे, दूसरी ओर असुरों की तरह खौफ़नाक हूण । मगर जैसे देवताओं की सेना का सेनानी स्कंद था, वैसे ही भारतीयों का सेनापति हर्षवर्द्धन था । आख़िर उसने असुरों को हरा कर छोड़ा । हूणों को भगा दिया और भारत की लाज बचा ली । इतना ही नहीं, हर्ष ने सीमा पार कर उन पर आक्रमण किया । बड़ी घमासान लड़ाई हुई । सारा मैदान सिरों और धड़ों से पट गया । हूण लोग लम्बी दाढ़ी और मूँछ रखते थे । भालों से कट-कट कर गिरे हुए उनके सिर मैदान में ऐसे लगते थे, जैसे शहद की मक्खियों के छत्ते हों । हूण सेना उनके सामने न ठहर सकी । बात की बात में वीर हर्ष ने दुश्मन के पाँव उखाड़ दिये ।

इसके बाद हर्ष की थकी सेना ने वंक्षु नदी के पार उतर कर आराम किया । वंक्षु नदी के किनारे केसर के खेत थे और वहाँ का केसर एशिया और यूरोप के अनेक देशों में बिकने जाया करता था । केसर के खेत खूब लहलहा रहे थे । क्यारियों में फूल चमक रहे थे । हर्ष की घुड़सवार सेना के घोड़े उन क्यारियों में लोटने लगे । उनके अयालों में केसर के फूल खुँस गये और चारों तरफ महक उड़ने लगी ।

राज्यवर्द्धन मन ही मन अपने भाई के पराक्रम को देख बाग़-बाग़ हो उठा । इस लड़ाई में उसने भाग न लिया था । वह अपने छोटे भाई हर्षवर्द्धन की तलवार के जौहर देखना

चाहता था। हर्षवर्द्धन ने पहली बार अपने ही भुजबल से हूणों के दाँत खट्टे किये थे, जिसे देखकर वह बहुत खुश था।

सुबह का समय था। सूरज ने अभी-अभी आँखें खोली थीं। उसे देख रात न जाने कहाँ भाग गई थी। सैनिक शिविर में राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन दोनों आपस में बातचीत कर रहे थे। हर्ष चाहता था कि इतनी दूर आये हैं तो दुश्मन का सिर पूरी तरह कुचल कर ही चलें। राज्यवर्द्धन इस पक्ष में नहीं था। उसका कहना था कि अपने राज्य में वापिस लौट चलें और वहाँ कुछ मास विश्राम करने के बाद नये उत्साह और जोश के साथ अपने दुश्मनों को सबक दिया जाये। लेकिन हर्ष की इच्छा पूरी न हो सकी। इसी समय थानेश्वर से आये हुए दूत ने शिविर में आकर खबर दी—

"महाराज प्रभाकरवर्द्धन सख्त बीमार हैं। उनकी हालत बड़ी गम्भीर है। वे अपने दोनों पुत्रों से मिलना चाहते हैं।

यह समाचार सुन कर राज्यवर्द्धन ने कहा, "हर्ष भाई तुम फौरन थानेश्वर लौट जाओ। मैं शीघ्र ही यहाँ का प्रवन्ध करके लौटूँगा। तब तक तुम पिताजी को धीरज बँधाना।"

हर्ष को अपना इरादा बदल कर भाई की आज्ञा का पालन करना पड़ा। वह उसी समय चुने हुए सैनिकों को साथ लेकर थानेश्वर चल दिया।

थानेश्वर पहुँचते-पहुँचते रात हो गई थी। सूरज धरती पर अंधकार की चादर डाल कर पहाड़ों के पीछे चला गया था। हर्ष और उसके सैनिक लगातार कई दिनों की यात्रा के कारण बेहद थक चुके थे। लेकिन जब राज्य की सीमा में पहुँचे तो सबको बड़ी खुशी हुई। जहाँ-तहाँ हर घर-द्वार पर राजकुमार की विजय की खुशी में दिये झिलमिला रहे थे और जगह-जगह उत्सव मनाये जा रहे थे।

थानेश्वर पहुँच कर हर्ष ने महल में प्रवेश किया। परम भट्टारक, महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन बुखार में बेहोश अपने पलंग पर लेटे हुए थे। उनके पास ही महामंत्री, राज्य के बड़े-बड़े अफसर और सेवक खड़े थे। हर्ष को सामने देख सबने झुक कर अभिवादन किया।

महामंत्री ने महाराज को धीरे से जगाते हुए कहा, "महाराज!......महाराज......जागिये......देखिये राजकुमार हर्ष विजय करके लौटे हैं......आपके पास खड़े हैं।"

हर्ष से भी न रहा गया, बोल उठा, पिताजी! देखिये मैं आ गया हूँ।"

प्रभाकरवर्द्धन को कुछ होश आया। धीरे से आँखें खोलते हुए बोले, "हर्ष! मेरा बेटा हर्षवर्द्धन आया है!! मेरे पास आओ, बेटे!"

हर्ष आगे बढ़कर उनके पास बैठ गया। अपना हाथ उनके हाथ में देकर कह उठा, "पिताजी यह क्या हो गया आपको? क्या मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकता?"

महाराज ने हर्ष के सिर पर हाथ फेर कर कहा, "यह तो शरीर का धर्म है, बेटा! जिसने जन्म लिया, उसकी मृत्यु भी होगी। इसे कोई नहीं रोक सकता। अब मैं पका फल हो गया हूँ। एक न एक दिन जाना ही पड़ेगा। मेरी एक बात ध्यान से सुनो।"

"कहिए, पिताजी!" हर्ष ने भरे गले से कहा।

महाराज धीमे स्वर में बोले, "तुम राजगद्दी पर बैठने के योग्य हो। तुमने राज्य की तमाम जनता का मन मोह लिया है। उसने एक योग्य राजा के सभी गुण तुम में देखे हैं। वही तुम्हीं को राजा बनाना चाहती है। बोलो, मेरी इच्छा पूरी करोगे न?"

"मैं इस योग्य नहीं हूँ, पिताजी ! दुबला और कमजोर आदमी हूँ। राज्य का बोझ कैसे उठा सकूँगा ?" हर्ष ने दुःख से कहा।

महामंत्री बोल उठा, "कुमार ! महाराज का मन इस हालत में दुखाना ठीक नहीं। वे चंद मिनटों के मेहमान हैं। क्या उनकी यह अन्तिम इच्छा भी पूरी न करोगे ?"

हर्ष का दिल पानी-पानी हो रहा था। बिछुड़ते हुए पिता को देख उसका दिल बैठा जा रहा था। महामंत्री की बात सुन कर वह तड़प उठा। बोला, "मैं आपके आदेश का पालन करूँगा।"

...और दूसरे ही क्षण प्रभाकरवर्द्धन की आँखें सदा के लिए बन्द हो गई। राज्य की सारी जनता शोक के सागर में डूब गई। जीत की खुशी में जगमगाते हुए सारे दीप एकाएक बुझ गये। सब जगह मातम छा गया।

राजकुमार हर्षवर्द्धन की खुशी में जैसे विधाता ने दुःख का जहर घोल दिया।



: २ :

पहाड़ टूटा

लगभग दो दिन बाद युवराज राज्यवर्द्धन भी जीत की खुशी में डूबा हुआ थानेश्वर आ पहुँचा। लेकिन नगर में घुसने पर उसकी तमाम खुशी हवा हो गई। लोगों के चेहरे उदास दिखाई दिए। राजभवन पहुँचने पर रोने-चिल्लाने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। उसने सोचा, कुछ न कुछ अमंगल जरूर है। वह एकदम सन्न रह गया। द्वारपाल ने बताया कि "महाराज प्रभाकरवर्द्धन नहीं रहे और उनके साथ राजमाता भी सती हो गई। राजकुमार हर्षवर्द्धन पर तो जैसे बिजली गिरी है। वह बार-बार बिलख-बिलख कर रो रहे हैं। अब उन्हें आप ही समझाइये। आपके सिवा उनका कोई नहीं है।"

राज्यवर्द्धन तेज़ी से महल में गया। उसे देखते ही हर्ष के दुःख का बाँध फूट पड़ा और वह बड़े भाई के गले से लिपट कर रोने लगा। बोला, "भैया, पिताजी चल बसे और माताजी भी हमें छोड़कर चली गई। अब क्या होगा? हमारी देख-भाल करने वाला अब कौन है?"

राज्यवर्द्धन ने हर्ष को पास बैठाया, उसे समझाया, धीरज दिया। फिर दोनों श्मशान भूमि पर चले आये और जहाँ माता-पिता के शरीर जले थे, उस स्थान के पास आकर बैठ गए।

राज्यवर्द्धन चिता की गर्म राख मुट्ठी में लेकर बोला, "मुझे दुःख इसी बात का है कि माता-पिता के अन्तिम दर्शन न हो सके।"

हर्ष ने कहा, "पिताजी की भी तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा थी। मरते दम तक उनकी आँखें दरवाज़े पर ही लगी रहीं और अन्त में उन्होंने तुम्हारा और राज्यश्री का नाम लेते हुए अपने प्राण छोड़े।"

"खैर ! जो होना था, वह हो चुका। अब पश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं है।"

हर्ष की आँखों से आँसू बह रहे थे। यह देख राज्यवर्द्धन से भी न रहा गया। उसकी आँखों में भी आँसू छलछला आये। हर्ष का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "माता-पिता का विछोह किसे दुःखी और विचलित नहीं करता, हर्ष ! लेकिन किया भी क्या जाये ? इस तरह हाथ पर हाथ धरे बैठने से तो दुःख हलका नहीं होगा। दुःख कम होगा अपने मन को दूसरे कार्यों में लगाने से।"

"यही मैं भी सोच रहा हूँ, भैया !" हर्ष ने कहा और बिखरे हुए अस्थि-फूलों की ओर देखने लगा। फिर सहसा साहस बटोरता हुआ राज्यवर्द्धन से बोला, 'भैया, तुम राजगद्दी पर बैठो और मैं तुम्हारे कार्य में हाथ बटाऊँ, तभी मन लग सकता है, अन्यथा नहीं।"

राज्यवर्द्धन फीकी हँसी हँस पड़ा। बोला, "हर्ष, जब मैं हूणों पर आक्रमण करने यहाँ से विदा हुआ था, तब यह राजप्रासाद, यह साम्राज्य भरा-पूरा था। अब लौटने पर देखता हूँ कि यहाँ का सुख, राजवैभव नष्ट हो चुका है और सब कुछ सूना-सूना सा लगता है। समय भी कितनी जल्दी बदलता है !"

"ठीक कहते हो भैया !" हर्ष ने कहा, "यही सवाल मुझे बींध रहा है। मनुष्य कितने अरमान लेकर सुख की वस्तुएँ जुटाता है, पर जब अंत काल आता है तो सारी वस्तुएँ

ड़कर उसे जाना पड़ता है।

"यह सब सत्य है, लेकिन तुम्हारे लिए यह बात नहीं। भी तुमने जीवन में देखा ही क्या है ? तुम मुझसे अधिक वल और बुद्धिमान हो। मेरी एक प्रार्थना है, स्वीकार रोगे ?"

"प्रार्थना नहीं, आज्ञा दो भैया !" हर्ष बोल उठा।

इसी समय सारथी ने आकर टोका, "राजकुमार ! रथ तैयार है। महामंत्री ने कहला भेजा है कि अधिक देर तक श्मशान भूमि में बैठना ठीक नहीं, इससे मन में विराग जन्म लेता है।"

दोनों राजकुमार सुनकर उठ खड़े हुए। वे रथ में बैठ महल में चले आये।

महामंत्री उनका इन्तजार कर रहे थे। उन्हें देखते ही राज्यवर्द्धन से बोले, "कुमार ! अब अधिक दिनों तक थानेश्वर की राजगद्दी सूनी नहीं रखी जा सकती। तुम दोनों में से एक को राजपद सुशोभित करना ही होगा। नियम के अनुसार राजा के बड़े पुत्र का गद्दी पर अधिकार पहले है। राज-पुरोहित ने राजतिलक करने के लिए शुभ मुहूर्त भी निकाल लिया है।"

सुनकर राज्यवर्द्धन का माथा ठनका। झुँझला कर बोला, "महामंत्री जी ! आपका कहना ठीक है। फिर भी मुझे सोचने के लिए समय दीजिए। एकदम निर्णय कर डालना मेरे वश की बात नहीं।"

"अच्छी बात है। मैं दो दिन का समय देता हूँ। तब तक अच्छी तरह सोच-विचार कर लो। मैं चलता हूँ।" कह कर महामंत्री चले गये।

राज्यवर्द्धन पुनः विचारों में खो गया। हर्ष बड़ी देर तक चुपचाप अपने भाई के चेहरे पर बदलते हुए हाव-भावों को

देखता रहा। उसे गंभीर देख वह रह न सका। उसके पास जाकर बोला, "क्या कह रहे थे, भैया! तुम्हारी यह चुप्पी मुझसे नहीं देखी जाती। अगर तुम्हीं अनमने रहे तो मेरा मन कैसे लगेगा?"

राज्यवर्द्धन जैसे सोते से जाग पड़ा। बोला, "हाँ, मैं कुछ कहना चाहता था हर्ष!"

"आज्ञा दो भैया!" हर्ष ने विनीत स्वर में कहा, "आज शायद पहली बार मुझे आपकी सेवा करने का अवसर मिलेगा।"

"मैं, यह कह रहा था," राज्यवर्द्धन ने अपने उत्तरीय को सँभालते हुए कहा, "इस माया-मोह रूपी संसार से मेरा मन उचट गया है। मैं यह राज-पाट सब छोड़कर जंगल में जाना चाहता हूँ।"

"जंगल में जाकर क्या करोगे?" हर्ष ने पूछा। राज्यवर्द्धन ने जमीन पर तलवार फेंक दी और बोला, "अब मैंने हाथ में तलवार न लेने का निश्चय कर लिया है। यह राज्यलक्ष्मी त्याग रहा हूँ। तुम राज्य-भार सँभालो। मैं सन्यास लूँगा।"

"यह क्या कह रहे हो भैया! तुम्हारा यह आदेश ठीक वैसा ही है, जैसे किसी देशभक्त से कहा जाये कि वह अपनी जन्म-भूमि से विश्वासघात करे। मेरी इतनी कठोर परीक्षा न लो, भैया! मैं उसमें सफल न हो सकूँगा।"

"नहीं हर्ष! मैं केवल आयु में तुमसे बड़ा हूँ, लेकिन ज्ञान, अनुभव और नीति में तुम मुझसे कहीं अधिक बड़े हो। राज्य पद के लिये तुम्हीं सर्वथा योग्य हो। राजगद्दी तुम्हें ही मिलनी चाहिये। मैं सन्यास ग्रहण कर ईश्वरभक्ति में डूबना चाहता हूँ, तभी भव-सागर से तर सकूँगा। राज्य-पद मेरे लिए काँटों की सेज होगी। मैं उस पर चैन से न सो सकूँगा।" राज्यवर्द्धन ने गम्भीर होकर कहा।



हर्ष हँस कर बोला, "ठीक तो यह होता कि आप ढाल बनकर अपने छोटे भाई की रक्षा करते; उसे समझाते; नीति के दो-चार पाठ पढ़ाते। लेकिन आप मुझे मंझधार में अकेला छोड़कर स्वयं अपने कर्त्तव्य से पीछे हटे जा रहे हैं......नहीं, आपको अपना यह फ़ैसला बदलना ही पड़ेगा।"

राज्यवर्द्धन ने विनम्र भाव से कहा, "मैं अपने इरादे पर अटल रहना चाहता हूँ। और इसके लिए मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत है।"

हर्ष का शरीर थर्रा उठा। उसके मन में अनेक विचारों का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। वह कुछ कह न सका। चुपचाप भाई की बातें सुनता रहा।

सहसा द्वारपाल ने कक्ष में प्रवेश किया। वह अभिवादन करके बोला, "देव क्षमा करें। कान्यकुब्ज से राजकुमारी राज्यश्री का संदेश लेकर दूत आया है। वह आपसे तुरन्त मिलना चाहता है।"

"उसे भेज दो।" हर्ष ने कहा।

दूत तुरन्त हाजिर हुआ। शीश झुका कर बोला, "देव, जिस दिन सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन के मरने की खबर मिली, उसी दिन मालवा के राजा देवगुप्त ने महाराज गृहवर्मा को मार डाला।"

दोनों भाई चौंक कर एक साथ कह उठे, "क्या कह रहे हो, दूत! कह दो कि यह सच नहीं है।"

दूत ने हाथ जोड़कर कहा, "अपराध क्षमा हो देव! लेकिन समाचार है सच। राजकुमारी राज्यश्री को मालवा-नरेश बन्दी बना कर ले गया है। वह अब थानेश्वर पर चढ़ाई करना चाहता है।"

सुनते ही राज्यवर्द्धन की भौंहें तन गईं। वह कठोर हो गया। उसके मन में छाया हुआ शोक काफूर हो चला। मुट्ठियाँ कस कर बोला, "दुष्ट देवगुप्त की यह हिम्मत !" उसने अपनी फेंकी हुई तलवार उठा ली। उसकी भुजाएँ फड़क उठीं। फिर हर्षवर्द्धन से बोला, "अब मैं संन्यास न लूँगा। अब तो मालवा के दुष्ट शासक देवगुप्त का विनाश करके ही दम लूँगा। आज गीदड़ शेर की मूँछ मरोड़ने की हिम्मत कर रहा है। ईंधन अपने-आप आग जलाने के लिये खड़ा है। मैं उस दुष्ट के वंश का नाश करूँगा। पुष्पभूति वंश के अपमान का बदला लूँगा। अपनी बहन राज्यश्री को मुक्त कराना मेरा पहला कर्त्तव्य होगा।"

भाई की बातें सुनकर हर्षवर्द्धन जोश से भर उठा। उसका वीरोचित खून खौल गया। बोला, "भैया ! मैं भी तुम्हारे साथ चलना चाहता हूँ। अपनी बहन का बदला देवगुप्त से गिन-गिन कर लूँगा।"

राज्यवर्द्धन रोष से बोला, "नहीं हर्ष ! गीदड़ को मारने के लिए शेरों की सेना ले जाना बेकार है। तिनके को तोड़ने के लिये कुल्हाड़ी उठाने से हँसी होती है। उसके लिए भारी तैयारी करने का मतलब होगा, उसके बड़प्पन को स्वीकार करना।"

सुनकर हर्ष को संतोष मिला। वह केवल हँस दिया। उसी समय राज्यवर्द्धन ने सेनापति भण्डि को बुलाकर आज्ञा दी, "दस हजार घुड़सवार सेना तुरन्त सुसज्जित की जाये। एक प्रहर के बाद हम यहाँ से कूच कर देंगे।"

आदेश लेकर भण्डि चला गया।

एक प्रहर के बाद राज्यवर्द्धन हर्ष से गले मिलकर विशाल

सेना के साथ चल पड़ा। हर्ष घोड़ों की टापों से उड़ती हुई धूल में ओझल होते हुए अपने भाई को बड़ी देर तक देखता रहा। फिर लौट पड़ा। वह मन ही मन सोच रहा था, "काल की करवट कितनी विकट है! जब काल करवट लेता है तो अनेक दु:ख एक साथ झेलने पड़ते हैं। दु:ख एक-एक करके नहीं आते। उनका एक साथ आना ही मनुष्य की परीक्षा है।

सोचते-सोचते वह सोने के कमरे में चला गया।



: ३ :

बदला और बदला

हवा की तरह थानेश्वर की सेना मालवा पहुँच गई। अभी सवेरा ही था। मालवा नरेश देवगुप्त कपटी और कायर था। जैसे ही वह जागा, उसे सुनाई पड़ा, 'हर हर महादेव!"

वह घबरा उठा। थानेश्वर की सेना की चढ़ाई की सूचना थी यह। उसने तुरन्त अपने सिपाहियों को साथ लिया और किले के फाटक पर आ डटा। भयंकर मार-काट आरम्भ हो गई। किले के भीतर से बाणों की वर्षा होने लगी, पर बाहर से समुद्र की तरह लहराती हुई राज्यवर्द्धन की सेना बढ़ती ही चली आ रही थी। उसने सीढ़ियाँ लगाकर किले की दीवार फाँदने का प्रयत्न किया। मालवा सेना ने कहर ढाया। फिर भी राज्यवर्द्धन ने हिम्मत नहीं छोड़ी। बाणों की वर्षा झेलकर भी वे आगे बढ़ते रहे और थोड़ी देर बाद किले में पैठ गए। उन्होंने भीतर से द्वार खोल दिया और सारी थानेश्वर की सेना टिड्डी दल की तरह किले में प्रवेश कर गई। मालव सेना को भागने का भी अवसर न मिला। थोड़े से ही बच सके, बाकी सब मारे गये। लेकिन देवगुप्त राज्यवर्द्धन के हाथ न लगा। वह भाग कर अवन्ती के किले में जा छिपा।

राज्यवर्द्धन उसे कब छोड़ने वाला था? उसने तो प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी बहन का बदला देवगुप्त से लूँगा, तभी पलंग पर सोऊँगा, अन्यथा ज़मीन पर सोकर रातें काटूँगा।

राज्यवर्द्धन ने उसी रात अवन्ती पहुँच कर किले के पास

अपना लश्कर उतार दिया। किसी को कानों-कान खबर भी न हो सकी। देवगुप्त चुपचाप भीतर अपनी सेना के प्रवन्ध में जुटा हुआ था। राज्यवर्द्धन के गुप्तचर ने पता लगा लिया कि किले के भीतर भारी तैयारी की गई है; इसलिये लड़ाई न करके किसी तरकीब से किले में प्रवेश करना चाहिये, तभी विजय मिल सकेगी।

ऐसे अवसर पर भण्डि की बुद्धि अपना चमत्कार दिखाती थी। उसने हर्ष से कहा, "महाराज, फाटक खोलना मेरा काम है। आप तैयार रहें। जैसे ही बिगुल बजे, आप तुरन्त किले में घुस जाएँ।"

राज्यवर्द्धन ने स्वीकृति दे दी।

उसी रात बाराती के वेश में सौ सैनिकों के साथ एक सजी हुई बारात ने किले के सेनापति से भीतर जाने की इजाज़त माँगी। घोड़े पर सवार दूल्हे ने भी कहा—"सेनापति जी! वापसी पर आपको भी मिठाई दी जायेगी, मेरी शादी हो जाने दीजिए।"

सेनापति बड़ा तेज मिजाज आदमी था। उसने किसी तरह भी बारात को भीतर न जाने दिया। यह देख बारात के साथ चल रही एक नर्तकी ने उससे कहा, "सेनापति जी! मेरी भी मजूरी हो जाने दीजिये। अगर बारात न गई तो मुझे धेला भी न मिलेगा।"

नर्तकी सुन्दर और चंचल थी। उसे देखकर सेनापति का मन डोल गया। उसने कहा, "पहले यहाँ अपना नाच दिखाओ, तब जाने दूँगा।"

नर्तकी राजी हो गई। सेनापति और फाटक के सभी रक्षक शराब पीकर बैठ गये। महफिल जम गई। नर्तकी नाचने लगी। उसका हाव-भाव देखकर सभी झूम उ[illegible]

से कुछ जवान आगे बढ़े और वे भी नर्तकी के साथ नाचने लगे। सिपाहियों की संख्या पचास से अधिक न थी। वे सब सेनापति के पास ही बैठे हुए थे। नर्तकी नाचती हुई सेनापति के पास जाकर झुकी और अपनी कटार उसकी छाती में भोंक दी। नाचने वाले बारातियों ने सैनिकों को दबोच लिया। कोई चिल्ला भी न सका। फाटक पर बारात का कब्ज़ा हो गया। दूल्हे ने घोड़े से उतर कर पूरा फाटक खोल दिया और नर्तकी से बोला, "राज्यवर्द्धन को बुला लाओ।"

भण्डि ने, जो नर्तकी बना हुआ था, बिगुल बजाया और थोड़ी ही देर में राज्यवर्द्धन सेना सहित किले में प्रविष्ट हो गया।

इस काण्ड का किसी को पता भी न चला। राज्यवर्द्धन ने किले के भीतर की सारी सेना का सफाया कर दिया। मालव नरेश ने इस बार भी भागनें की कोशिश की, पर राज्यवर्द्धन पहले ही से सतर्क था। उसनें फुर्ती से आगे बढ़कर तलवार से देवगुप्त की गर्दन पर वार किया, जिससे उसका सिर कटकर ज़मीन पर लोटने लगा। राज्यवर्द्धन ने भाले की नोंक पर सिर को उठाया और किले के बुर्ज़ पर टाँग दिया।

देवगुप्त से अपनी बहन का बदला लेने के बाद राज्यवर्द्धन ने राज्यश्री की खोज की, लेकिन वह नहीं मिली। निराश होकर वह लौट पड़ा। लौटते हुए उसनें अनेक गुप्तचर राज्यश्री का पता ढूँढ़ निकालने के लिए तैनात किये।

उन दिनों बंगाल में शशांक राजा राज्य करता था। वह मालव नरेश देवगुप्त का परम मित्र था। राज्यवर्द्धन के मालवा जीत लेने का समाचार उसे मालूम हुआ तो वह मन ही मन चिंतित हो उठा। राज्यवर्द्धन की शक्ति को देखकर उसकी

आत्मा काँप गई। उसे यह भय सताने लगा कि कहीं राजकुमार मेरा सिंहासन न छीन ले। शंका और ईर्ष्या से वह व्याकुल हो उठा। उसके मन में बार-बार यही प्रश्न उठने लगा कि किस प्रकार राजकुमार को दुनिया से उठा दूँ ? युद्ध में मारना तो उसने असम्भव समझ लिया; क्योंकि शशांक को विश्वास हो गया था कि राज्यवर्द्धन को हराने वाला सेनानी अभी तक पैदा ही नहीं हुआ है। अन्त में उसने छल-नीति से काम लेने का निश्चय किया। देर तक वह मन ही मन अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करता रहा, फिर एकाएक प्रसन्न हो उठा। उसकी आँखों में चमक आ गई और वह अपने-आप पर खुद ही मुस्करा उठा। उसने एक अचूक षड्यन्त्र सोच लिया था, जिसके द्वारा उसकी इच्छा पूर्ण हो सकती थी। वह उठा और अकड़ता हुआ महल में टहलने लगा।

मालवा-विजय के उपलक्ष्य में राज्यवर्द्धन का सम्मान करने के लिए शशांक ने अपना दूत भेज कर रास्ते में से ही उसे बुलवा लिया। राज्यवर्द्धन उस पर विश्वास करके चल पड़ा। दावत देने के बाद भरे दरबार में शशांक ने राज्यवर्द्धन को राजसी वस्त्र प्रदान किये। उन पर सोने-चाँदी का काम किया गया था। उस चमचमाती हुई और सुगन्धित पोशाक में राज्यवर्द्धन को देखकर सभी दरबारी तालियाँ बजाने लगे। फिर स्वर्ण-मुद्राओं तथा आभूषणों से भरा हुआ थाल राजकुमार को भेंट कर शशांक ने उसकी प्रशंसा में कुछ शब्द कहे। इसके बाद दरबार उठ गया। राज्यवर्द्धन अपने सरदारों के साथ शिविर की ओर लौट पड़ा।

राजकुमार थोड़ी दूर तक ही आया था कि उसका सिर चकराने लगा। उसने सरदारों को बताया, "मेरी सारी देह में जैसे आग जल रही है !"



सरदार घबरा उठे। तुरन्त उसे लेकर शिविर की ओर भागे। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते राजकुमार बेहोश हो गया। वैद्य के आने तक उसकी सारी देह काली पड़ गई और हाथ-पैर अकड़ने लगे। छावनी में कुहराम मच गया। देखते-देखते राजकुमार राज्यवर्द्धन सदा के लिये सो गया। बेहोशी में ही उसकी मृत्यु हुई थी, इसलिये न उसने आँखें खोलीं और न किसी से कुछ कह-सुन सका। वह चुपचाप शान्त हो गया।

इस दुर्घटना का रहस्य यह था कि शशांक ने पोशाक के कपड़े प्राणघातक विष में तर करा दिये थे। उसी के प्रभाव से राजवर्द्धन की ऐसी अकाल मृत्यु हुई।

बिजली की तरह राज्यवर्द्धन की मृत्यु का समाचार थानेश्वर पहुँचा। प्रजा में एक बार फिर शोक की लहर फैल गई। लेकिन हर्षवर्द्धन के दिल में शोक के स्थान पर क्रोध की ज्वाला धधक उठी। उसकी भौंहें टेढ़ी हो गईं; नथुने फूल उठे। उसका स्वरूप भयंकर हो उठा। वह उस समय ऐसा लगने लगा मानो विष्णु ने नरसिंह का या शिव ने भैरव का रूप धारण किया हो। पास ही बूढ़ा सेनापति खड़ा था। उसके सामने हर्ष ने प्रतिज्ञा की, "माना कि आज सूर्य का अन्त हो गया, पर अभी थानेश्वर में अंधकार नहीं होगा। मैं अभी जीवित हूँ। अपने भाई का बदला मैं शशांक से लूँगा। वह दुष्ट बचकर नहीं जा सकता।"

सेनापति सिंहनाद की भुजायें फड़क उठीं। हर्षवर्द्धन को उसकी प्रतिज्ञा पर आशीर्वाद देते हुए उनने कहा, "तुम वीर हो। तुम्हारे वंश की नीति है दुश्मन को शेष न रखना। तुम उसी परम्परा का अनुसरण करो। आज सियार ने तुमको चुनौती दी है। शशांक ने तुम्हारे भाई को मार कर थानेश्वर में महाप्रलय मचा दी है। परशुराम ने अपने पिता के मारे जाने

पर इक्कीस बार राजवंशों का नाश किया। तुम भी वीर हो। शशांक का नाश तुम्हारे ही हाथों लिखा हुआ है। ईश्वर तुम्हें यश दे।"

सेनापति सिंहनाद के वीरता से भरे शब्दों ने आग में घी का काम किया। हर्षवर्द्धन का स्वर और भी कठोर हो गया। "आर्य सुनिये। मैं आपके चरणों को छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ, शीघ्र ही शशांक का सिर पृथ्वी पर लोटेगा। दुष्टों के पैरों में बेड़ियाँ पड़ जायेंगी। या तो मैं इस प्रतिज्ञा को पूरा करूँगा, वरना अपने शरीर को आग में झोंक दूँगा।"

इतना कहकर हर्षवर्द्धन अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में जुट गया।



: ४ :

राजतिलक

थानेश्वर का राजसिंहासन खाली पड़ा था। मन्त्री सभा ही सारे शासन को चला रही थी। हर्षवर्द्धन राजा बनने से इंकार कर रहा था। उसे राज्य-शासन में तनिक भी दिलचस्पी न रही थी। बहन के लापता होने तथा बड़े भाई की हत्या से वह निराश हो गया था।

उसकी यह दशा देखर महामंत्री से न रहा गया। वह राजभवन में आकर हर्ष से बोला, "पन्द्रह दिन बीत चुके हैं, कुमार हर्ष! अब तो दुःख को भूल जाओ। भाई-बहन के शोक में डूब कर इस तरह कब तक अपने शरीर को घुलाते रहोगे? बीती हुई बातें याद करने से कोई लाभ नहीं। माना कि आप पर घोर मुसीबत आ पड़ी है। लेकिन दिल छोटा न करें। विपत्तियों में धैर्य से काम लेना ही सच्चे वीर की कसौटी है। इस विकट समय में पृथ्वी का भार वहन करने के लिए आपको शेषनाग का रूप धारण करना होगा।"

हर्षवर्द्धन ने निराश भाव से महामंत्री की ओर देखा। उनकी आँखों में पीड़ा और सहानुभूति लहरा रही थी। यह देख हर्ष का दिल भी रो उठा। वह महामंत्री से बोला, "मुझे सोचने के लिए कुछ समय दें। मेरा मन बहुत विचलित है।"

महामंत्री ने कहा, "ठीक है, राजपुत्र! आप सोच लें। लेकिन राजगद्दी पर आप ही को बैठना होगा। एक के बाद एक आने वाली मुसीबतों से राज्य में भय और शासन में ढीलापन आ गया है। जनता घबराई हुई है। इसलिए आप तुरन्त

सिंहासन ग्रहण करें। भाई के हत्यारे शशांक से बदला लें और बहन राज्यश्री का उद्धार करें।"

"नहीं, सेनापति! सिंहासन ग्रहण कर मैं दिन-रात काँटों की सेज पर नहीं सो सकता। यह मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है।" हर्ष आवेश से बोला।

महामंत्री हँस पड़ा। फिर कुछ गंभीर होकर बोला, "राजपुत्र! ज़रा देश की हालत पर तो गौर करो। तुम्हारे सिंहासन पर न बैठने से अनेक शक्तिशाली शत्रुओं की नज़र इस राज्य पर लगी हुई है। अगर अभी से राज्य-कार्य में ध्यान न दिया गया तो यह शासन किसी दूसरे के हाथ में चला जायेगा।"

सेनापति की बात सुनकर हर्षवर्द्धन सोच में पड़ गया। फिर धीरे से बोला, "अच्छा, आज की रात मुझे विचार करने दो। कल सुबह मैं अपना निश्चय आपको बता दूँगा।"

इस आशा से कि राजकुमार का निर्णय मेरे अनुकूल ही होगा, महामंत्री खुशी-खुशी महल से बाहर चला गया।

सुबह उठते ही हर्षवर्द्धन ने महामंत्री को महल में बुला कर अपना निर्णय सुना दिया। सुनकर महामंत्री निराश हो गये। उन्होंने तुरन्त मंत्रियों की सभा बुलाई और राजकुमार के फैसले को सबके सामने रखा। सारी सभा में खलबली मच गई।

मंत्रियों ने एकमत होकर निर्णय किया, "यदि हर्षवर्द्धन राजा नहीं बनेंगे, तो हम भी मंत्री नहीं रहेंगे।"

यह समाचार हर्ष के पास पहुँचा। वह गम्भीर हो गया उसी समय प्रजा के चुने हुए कुछ व्यक्तियों का भी एक समू उनके महल में पहुँचा। सभी ने प्रजा की ओर से प्रस्ताव रख

"यदि आप थानेश्वर के राज-सिंहासन पर नहीं बैठेंगे तो हम सब अनशन प्रारम्भ कर देंगे। फिर इस कार्य में हमारे प्राण ही क्यों न निकल जायें।"

हर्षवर्द्धन यह सुनकर चौंक उठा। वह उन सभी को वचन देते हुए बोला, "अगर मेरी प्रजा और अधिकारी-वर्ग की इच्छा है कि मैं राजा बनूँ तो मैं इच्छा न होते हुए भी राज-काज करूँगा। प्रजा की प्रार्थना स्वीकार करना मेरा धर्म है।"

राजकुमार की बात सुनते ही सब व्यक्ति खुशी से उछल पड़े। "सम्राट् हर्षवर्द्धन की जय! माँ भारती की जय!!" के शब्दों से आकाश गूँजने लगा।

दूसरे दिन सुबह ही सारे थानेश्वर में खुशी की लहर दौड़ गई। हर्षवर्द्धन के राजा बनने की बात सुनकर सारी प्रजा उसको बधाई देने दौड़ पड़ी। महल के बाहर का मैदान अपार भीड़ से भर गया। हर्ष ने बड़े आदर से सबका अभिवादन स्वीकार किया। राज-पुरोहित ने राजतिलक का शुभ मुहूर्त निकाला और दिन की घोषणा कर दी। राज्य के तमाम जागीरदारों, राजाओं और सरदारों को निमंत्रण भेजा गया। चारों ओर खुशी का सागर उमड़ पड़ा।

राजगद्दी के लिए निश्चित दिन आते-आते थानेश्वर में देश के सभी भागों से आये हुए लोगों की भीड़ लग गई। दो वर्षों के बाद वहाँ का सिंहासन सजने वाला था। इन दो वर्षों में जनता ने न जाने कितने दुःख सहे थे। पर आज लोग उस शोक को भूल गये। जान पड़ता था, आज उनके जीवन का नया दिन था।

ठीक समय पर दरबार लगा। देश के सभी राजे-महाराजे बैठे हुए थे। कामरूप के राजा की ओर से भी एक



उपहार लेकर आया हुआ था। सभी अपने-अपने स्थानों पर विराजमान थे। बीचों-बीच सोने का सिंहासन सजा हुआ अपने स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। दोपहर होते ही पंडितों ने शंख बजाये। ब्राह्मणों ने वेदमंत्र पढ़ना आरम्भ किया, बाजे बजने लगे, और उसी उत्साह में जय-जयकार करते हुए लोगों ने देखा कि सिंहासन के पीछे पर्दे से राजकुमार हर्षवर्द्धन निकल रहे हैं। वे गंभीर चाल से आकर सिंहासन पर बैठ गये। जय-जयकार का कोलाहल बढ़ गया। चारों ओर फूलों, स्वर्ण मुद्राओं और रत्नों की वर्षा होने लगी। ऐसा जान पड़ा, मानो आनन्द के मारे आकाश फट पड़ना चाहता है।

इस कोलाहल के बीच कुलगुरु ने राजकुमार को राजतिलक किया। उपस्थित प्रजा ने आनन्द और हर्ष का अनुभव किया। नगर की कुमारियों ने सम्राट् पर पुष्प वर्षा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। सम्राट् हर्ष इस अनोखे प्रेम को देख गद्गद् हो उठे। उन्होंने अपने सिंहासन से उठ कर कहा, "राजा और प्रजा का पिता-पुत्र का नाता है। दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। मैं भी आज अपनी प्रजा का प्रेम पाकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी प्रजा फले-फूले, सुखी रहे, यही मेरी मनोकामना है। मैं आप सब की इच्छा से सम्राट् बना हूँ। अब मेरा पहला कार्य होगा अपनी बहन राज्यश्री को खोजना; दूसरा देश का संगठन; तीसरा अपने शत्रुओं का अंत करना।"

प्रजा सम्राट् का भाषण सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। इतने में एक आदमी ने कहा, "सम्राट् आपसे मेरा एक निवेदन है। आप शत्रुओं को हरा कर उनको प्राण दण्ड दें। उनके प्रति दया या क्षमा का भाव अपने मन में तनिक न आने दें।"

सम्राट् मुस्कराकर बोले, "अभी शत्रु हारा ही कहाँ है ? दूत की कल्पना क्यों करते हो ! शत्रु को दण्ड देने का समय आने दो, फिर देखा जाएगा।"

सम्राट् के सुन्दर वचन सुनकर प्रजा में उल्लास छा गया। सबके हृदय सम्राट् के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम से भर गये।

इसके बाद महाराज सब से विदा लेकर अपने महल में चले गये और अगला कार्यक्रम बनाने में व्यस्त हो गये।

: ५ :

बहन की खोज

राज-तिलक हो जाने के बाद महाराज हर्षवर्द्धन अपने शासन का भार महामंत्री को सौंप कर बहन राज्यश्री की खोज में चल पड़े। उसे ढूँढते हुए वह विन्ध्याचल पर्वत के बीहड़ जंगलों में जा पहुँचे।

विन्ध्याचल के इस वन-प्रदेश में दिवाकर मित्र का आश्रम था। दिवाकर मित्र बौद्ध भिक्षु थे। यह आश्रम एक छोटी-सी नदी के किनारे था। इस विशाल आश्रम में अनेक विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे। उन दिनों दिवाकर मित्र के ज्ञान की प्रसिद्धि सारे भारतवर्ष में फैली हुई थी।

हर्षवर्द्धन अपनी बहन को खोजते-खोजते उनके आश्रम में पहुँचे। दिवाकर मित्र को उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम किया। दिवाकर मित्र ने उन्हें आशीर्वाद देकर पास पड़ी चटाई पर बैठने के लिये कहा। हर्षवर्द्धन आश्रम के शान्तिपूर्ण वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। थोड़ी देर बाद सम्राट् हर्षवर्द्धन ने स्वयं ही दिवाकर मित्र से कहा, 'भगवन्! मैं थानेश्वर का राजा हूँ। मेरे परिवार के सारे व्यक्ति नष्ट हो गये हैं। केवल एक बहन बची थी। वह अपने पति के मर जाने के कारण सम्भवतः इधर आई हो। मैं उसी की खोज में इधर आया हूँ। यदि आपको कुछ मालूम हो तो बताइए।'

दिवाकर मित्र सम्राट् हर्ष की बातों से बड़े ... बोले, 'तुम थानेश्वर के सम्राट् ... ...

है, लेकिन साक्षात्कार आज ही हुआ। बहुत खुशी हुई तुम से मिल कर। मुझे तुमसे बड़ी सहानुभूति है, लेकिन खेद है कि तुम्हारी बहन राज्यश्री के बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं और न कोई समाचार ही मिला है। पर चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। भगवान बुद्ध अवश्य तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

इतना कहकर दिवाकर मित्र मौन हो गये। उन्होंने भगवान् के ध्यान में अपनी आँखें बन्द कर लीं। सम्राट् हर्ष भी उदास भाव से उनके निकट बैठ गये, मानो उनसे भगवान के सहारे की याचना कर रहे हों।

तभी एक आदमी दौड़ता हुआ आश्रम में आया और बोला, "भगवन्! अनर्थ हो गया।"

दिवाकर मित्र ने आँखें खोलीं। बोले, "क्या बात है नन्दन ?"

नन्दन बोला, "भगवन्, महान् संकट आ पड़ा है। एक स्त्री अग्नि में भस्म होने जा रही है। कृपया आप उसे बचा लें।"

नन्दन की बात सुनकर सम्राट् हर्षवर्द्धन का माथा ठनका। उनके मन में शंका पैदा हुई। उन्होंने अधीर होकर नन्दन से पूछा, "भाई वह स्त्री कहाँ है? वह क्यों अपने जीवन को समाप्त करना चाहती है? इस समय वह कहाँ है?"

"महाराज, वह विन्ध्य के बीहड़ में है। बड़ी भारी चिता धू-धू कर जल रही है। वह स्त्री उस चिता के पास बैठी रो रही है।"

सम्राट् हर्ष से न रहा गया। वह नन्दन से बोले, "मुझे उस स्थान पर ले चलो। वह स्त्री अवश्य ही बहन राज्यश्री होगी।"

दिवाकर मित्र की आँखें चमक उठीं। मुस्कराकर उठते हुए वह बोले, "भगवान् करे ऐसा ही हो। मेरे आश्रम में आकर कोई निराश न लौटे, यही मैं सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना करता रहता हूँ।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन नन्दन के साथ चल पड़े। दिवाकर मित्र उनके पीछे-पीछे हो लिये।

× × ×

मनुष्य अधिक कष्टों से घबरा उठता है। अधिक कष्टों में वह जीवन को समाप्त करने की सोच बैठता है। यही हाल राज्यश्री का था। वह पागलों की भाँति बड़बड़ा रही थी, "मेरा भाई नहीं आया और न आयेगा ही! वह मर चुका है। हर्ष अभी छोटा है। मौखरी वंश में मेरी सुध लेने वाला कोई है ही नहीं। सब इस दुखिया के लिये सो गये हैं। अरी विन्ध्याचल की भूमि, तू ही फट जा! तुझ में मैं समा जाऊँ! सीता की भाँति मुझ दुखिया को भी तू शरण दे, माँ! नहीं-नहीं, मैं तो इस चिता में जलूँगी। चिता की आग जल चुकी है। हा माता! हा पिता! तुम कहाँ हो? मैं तुम तक अभी पहुँच रही हूँ।" वह ज़ोर-ज़ोर से रोने और विलाप करती हुई चिता की ओर बढ़ी।

इसी समय नन्दन और दिवाकर मित्र के साथ हर्षवर्द्धन ने जंगल में प्रवेश किया। इधर-उधर देखने के बाद सम्राट् ने अधीर होकर कहा, "इस ओर तो कोई भी नहीं दिखाई दे रहा, मुनिवर! राज्यश्री न जाने कहाँ होगी? मुझे तो भय लग रहा है कि कहीं वह उन्मत्त होकर चिता में प्रवेश न कर ले।"

दिवाकर मित्र ने ध्यानपूर्वक देख [illegible] हुए कहा—



कुमार ! उस दिशा में जलती चिता की ओर मुँह किये, आकाश की ओर पागल की तरह देखती हुई वह स्त्री राज्यश्री के अलावा और कौन हो सकती है ?"

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने भी दूर से राज्यश्री का विलाप सुना। वे चिल्ला उठे, "बहन ठहरो ! मैं आ गया हूँ। तुम्हारा भाई हर्ष आ गया है। धीरज धरो ! अपने को संभालो ! पर राज्य श्री चिता तक पहुँच चुकी थी। उसने न सुना। वह बड़बड़ा उठी, "मेरा कौन है ? अग्नि मेरा घर है।" यह कह कर वह चिता में कूदने वाली ही थी कि सम्राट् हर्षवर्द्धन ने उसे पकड़ लिया।

राज्यश्री ने चौंक कर हर्ष की ओर देखा, "कौन ?...... हर्ष !......"

हर्ष गद्‌गद् होकर बोले, "हाँ राज्यश्री, तुम्हारा भाई हर्ष !......मैं तुम्हें लेने आया हूँ......चलो।" वे उसे चिता से दूर ले आये। फिर दोनों भाई-बहन प्रेमपूर्वक मिले।

इतने में दिवाकर मित्र भी आ पहुँचे। उन्हें देख कर सम्राट् हर्षवर्द्धन ने कहा, "बहन, इन्हें प्रणाम करो। ये हमारे गुरु हैं। तुम्हारे पति के मित्र हैं। इनका नाम दिवाकर मित्र है।"

राज्यश्री ने दिवाकर मित्र को प्रणाम किया, किन्तु पति का नाम आते ही वह रो उठी। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने उसे धीरज बँधाया। वह चुप हुई। तब उसने हर्षवर्द्धन से अपने पति की मृत्यु का हाल कहा। वह मालवा के राजा की जेल से कैसे भागी, यह भी बताया। सम्राट् हर्षवर्द्धन और दिवाकर मित्र दोनों ने राज्यश्री की ये सब बातें बड़े ध्यान से सुनीं और उसे सबकुछ भूल जाने के लिए कहा।

कुछ समय तक शान्त रहने के बाद दिवाकर मित्र राज्यश्री से बोले "देवि ! चिन्ता न करें। शोक को त्याग दे। शोक

कभी न वुझनें वाली आग के समान है। सारा संसार नश्वर है। भगवान वुद्ध आपको शक्ति देंगे। आपके जीवन को सुखी वनायेंगे।" और इतना कह कर वे चुप हो गये।

सम्राट् हर्ष ने कहा, "अच्छा वहन ! जो हो गया, सो हो गया। अव वीती वातों को याद करने से कोई लाभ नहीं। होनी वड़ी वलवान् होती है। उसे कोई टाल नहीं सकता। तुम मेरे साथ थानेश्वर चलो। मैं तुम्हें लेने आया हूँ।"

"नहीं भैया, मुझे चिता में जल जाने दो। मेरे लिये कुछ शेप नहीं रह गया है। मैं किस मुँह से तुम्हारे साथ जाऊँ ?" राज्यश्री ने आँखों में आँसू भर कर कहा।

हर्षवर्द्धन वोले, "यह सच है वहन, लेकिन इस तरह प्राण त्यागने से क्या होगा ? मेरी भी हालत वहुत वुरी है, वहन ! लेकिन काल से साँस का जो ऋण लिया था, उसे तो किसी न किसी तरह चुकाना ही होगा।...तुमसे यही प्रार्थना है, मेरा साथ न छोड़ो। अपने इस अभागे भाई के पास रहो। हम दोनों दु:खी भाई-वहन एक दूसरे का सहारा वनें।"

राज्यश्री सोच में पड़ गई। फिर कह उठी, "अच्छा हर्प, मैं प्राण त्याग नहीं करूँगी। लेकिन मैं भिक्षुणी अवश्य वनूँगी।"

हर्प ने निराश स्वर में कहा, "लेकिन वहन यह काम तुम्हारे लायक नहीं।..... मुनिवर मित्र! आप ही राजश्री को समझाएँ।"

पर राज्यश्री नहीं मानी। वह दिवाकर मित्र से वोली, "भगवन् ! आपके वचन सत्य हैं। मैं भगवान वुद्ध की शरण में जाना चाहती हूँ। मुझे वौद्ध धर्म ग्रहण करने की आज्ञा दें। आप जैसे गुरु का मिलना कठिन है। आप मनुष्यों में रत्न हैं।"

दिवाकर मित्र ने उत्तर दिया, "देवि, तुम्हारा बड़ा भाई ही तुम्हारा गुरु है। उसकी आज्ञा पर ही तुम बौद्ध धर्म ग्रहण कर सकती हो।"

राज्यश्री दिवाकर मित्र का उत्तर सुन कर हर्षवर्द्धन की ओर आशा भरे नेत्रों से देखने लगी। तीनों कुछ काल तक शान्त रहे। फिर सम्राट् हर्षवर्द्धन बोले, "बहन, दिवाकर मित्र ठीक कहते हैं। वे दुःखों में सहारा देने वाले हैं। मैं आर्य दिवाकर मित्र से निवेदन करूँगा कि वे तुझे अपनी शिष्या बनायें; परन्तु अभी तू भिक्षुणी न बन। पहले मैं शत्रुओं का नाश कर लूँ, फिर मैं और तू दोनों एक साथ बौद्ध बनेंगे।"

राज्यश्री ने सम्राट् हर्षवर्द्धन की बात खुश होकर मान ली। सम्राट् ने दिवाकर मित्र से थानेश्वर चलने को कहा। दिवाकर मित्र चलने को राजी हो गये। सम्राट् हर्षवर्द्धन अपनी बहन और दिवाकर मित्र के साथ सकुशल थानेश्वर लौट पड़े।



: ६ :

दोनों राज़ी

दिवाकर मित्र के साथ जब दोनों भाई-बहन कन्नौज पधारे तो वहाँ की जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। राजगद्दी पुनः आबाद होने की कल्पना कर लोग फूले न समाये।

कन्नौज के महामंत्री ने महल में आकर दोनों को फूलों के हार पहनाये और बौद्ध गुरु दिवाकर मित्र के चरण छुए। फिर अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा, "अब महारानी राज्यश्री कन्नौज के सिंहासन को सुशोभित करें। वह आज कई मास से उत्तराधिकारी की प्रतीक्षा में सूनी पड़ी है।"

यह सुन राज्यश्री की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। उसे पति की याद ताज़ा हो आई। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने बहन को बहुत समझाया-बुझाया और कहा, "बहन ! महामंत्री ठीक ही कह रहे हैं। तुम शासन का भार सम्हालो। इससे तुम्हारा दुःख बहुत कुछ हलका हो जायेगा और प्रजा के सुख-दुःख का भी ध्यान रख सकोगी।"

लेकिन राज्यश्री नहीं मानी। वह बोली, "सिंहासन पर स्त्री कैसे बैठ सकती है ? राज-काज देखने की उसमें योग्यता कहाँ ? पुरुष का काम नारी को शोभा नहीं देता, भैया ! मैं सिंहासन पर न बैठूँगी।"

"यही तुम भूल करती हो, बहन ! नारी को पुरुष से हीन किसी भी दशा में न समझना चाहिए। उसमें पुरुष से भी अधिक क्षमता होती है। वह कठिन से कठिन काम पुरुष की

अपेक्षा अधिक योग्यता से कर सकती है। वह फूल से कोमल और वज्र से कठोर होती है। केवल उसके मन में यह बात समा जानी चाहिए—जहाँ चाह वहाँ राह।" सम्राट् हर्ष कुछ गंभीर हो गए थे।

फिर भी राज्यश्री अपनी बात पर अटल रही। बोली, "भैया तुम जो इतनी ज्ञान की बातें बघार रहे हो, तो स्वयं ही क्यों नहीं कान्यकुब्ज का सिंहासन ग्रहण करते! इसमें आपत्ति ही क्या है?"

"नहीं, राज्यश्री! मुझसे यह अन्याय न होगा। कान्यकुब्ज का सिंहासन तुम्हारा है। तुम्हें उस पर बैठना ही पड़ेगा।" हर्ष ने विरोध किया।

राजश्री हँस कर बोली, "संन्यास लेने जा रही स्त्री को तुमने इसलिए रोका हर्ष, कि उसे सिंहासन का लालच दे सको! ···नहीं भैया, अब मेरे लिए सिंहासन में कोई आकर्षण नहीं रहा। पति के रहते हुए हिन्दू स्त्री को जो मान-सम्मान मिलता है, वह उसके मरने के बाद कहाँ? आर्य स्त्री की मृत्यु तभी हो जाती है, जबकि उसका पति रण में पराजय का मुँह देखता है या उसकी मृत्यु हो जाती है।"

सम्राट् ने खीज कर कहा, "मेरे ही लिये कौन-सा आकर्षण है, राज्यश्री? ···मैं भी सन्यासी होना चाहता था, लेकिन कर्तव्य इच्छा से बड़ा होता है। कर्तव्य पर इच्छाओं को बलि देनी पड़ती है। राजा का कर्तव्य तो उससे भी बडा होता है। मुझे भी इच्छा न होते हुए थानेश्वर का राज्य ग्रहण करना होगा।"

यह सुन कर राज्यश्री का दिल पिघल उठा। अपने भाई के कंधे पर हाथ रख कर वह बोली, "मेरे दु:खी भाई मैं अच्छे



और दु:खी न करूँगी। लेकिन सहायता के लिए तुम मेरे निकट रहोगे न ?"

हर्ष प्रसन्न होकर बोला, "अवश्य ! मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारे साथ थानेश्वर का राज्य ग्रहण करूँ। लेकिन मैं महाराजाधिराज की उपाधि न स्वीकार करके केवल कुमार उपाधि ग्रहण करूँगा और अपना उपनाम दिवाकर मित्र के आग्रह पर 'शिलादित्य' रखूँगा।

राज्य भर में यह निश्चय बड़ी प्रसन्नता से सुना गया। चारों ओर खुशी छा गई। लोग महल के बाहर जमा होकर राज्यश्री को बधाई देने लगे। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने राज्यश्री की सलाह से कन्नौज का राज्य अपने राज्य में मिलाकर राज्य की राजधानी 'कन्नौज' बनाये जाने की घोषणा की।



: ७ :

मेहमान का स्वागत

सन् ६२६ ई० में ह्वेनसांग चीन से भारत की यात्रा पर चल पड़ा। चीन में उस समय टंग वंश का राज्य था। भारत में हर्षवर्द्धन का राज्य था। इस महान् दानवीर राजा के गुणों के अनेक किस्से-कहानियाँ सुनकर ही ह्वेनसांग को हर्ष से भेंट करने की इच्छा हुई। बड़ी उमंग के साथ वह स्थल मार्ग से गोबी का रेगिस्तान पार करके तुरफान, कूचा, ताशकन्द, समरकन्द, बलख, खोतान और यारकन्द होता हुआ हिमालय पार करके भारत आया। आते ही वह हर्ष से मिलने कन्नौज की ओर चल पड़ा।

वह कन्नौज से कुछ ही दूर बीहड़ों में भटक रहा था कि डाकुओं की एक टोली ने उस घेर लिया। डाकुओं ने उससे कहा, "तुम्हारे पास जो कुछ माल है, उसे हमारे हवाले कर दो। नहीं तो मार-मार कर बुरी गत बना देंगे।"

ह्वेनसांग हँस कर बोला, "मेरे पास शान्ति, अहिंसा और प्रेम का धन है। यदि तुम चाहो तो ले सकते हो।"

डाकुओं के सरदार ने समझा कि यह भिक्षु हमारा मज़ाक उड़ा रहा है। इसलिए वह कड़ककर बोला, "मूर्ख ! धन देता है या नहीं ?"

पर ह्वेनसांग घबराया नहीं। वह उस सरदार से प्रेमपूर्वक बोला, "भाई मैं तो तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि मेरे पास तृष्णा या मोह उत्पन्न करने वाला धन नहीं है, मेरे पास तो सुख देने वाला धन है।"



इस पर एक डाकू ने कहा, "मूर्ख ! सुख देने वाले धन को तो हम माँग ही रहे हैं। धन से ही तो सुख प्राप्त होता है !"

ह्वेनसांग ने उत्तर दिया, "तुम शान्ति से सुख प्राप्त कर सकते हो। किसी को न सता कर तुम अमर वन सकते हो। किसी को न सताना ही अहिंसा है। ये शान्ति और अहिंसा के दो अमूल्य धन तुम ग्रहण करो।"

डाकुओं का सरदार आग-वबूला हो गया। गुस्से में भर कर वह वोला, "मूर्ख, शैतान, तेरी यह हिम्मत ! तेरी शान्ति और अहिंसा को मैंने मुर्दे में देखा है। तेरे कहे सुख को मैं धोखा मानता हूँ। तू धन निकाल, नहीं तो मैं तेरी जान निकालता हूँ।"

ह्वेनसांग मौन रहा। इसी बीच में एक डाकू ने कहा, "इसे फाँसी दे दो। इसने हमारा अपमान किया है। फाँसी देनें के वाद ही हम इसकी तलाशी लेंगे।"

सव डाकुओं नें इस वात का समर्थन किया। वे सव फाँसी का फंदा लटकाने में लग गये। इधर ह्वेनसांग भगवान बुद्ध को स्मरण करने लगा। वह उनकी भक्ति में खो गया। उसकी भक्ति के प्रभाव से ही एक भयंकर और तेज आँधी चल पड़ी। सव डाकू घवरा गये। सवने इसे ह्वेनसांग का चमत्कार माना और चमत्कार को नमस्कार करने की दुनिया की आदत है। उन्होंने तुरन्त दौड़कर ह्वेनसांग के चरण पकड़ लिए। चरण पकड़ते ही आँधी रुक गई। वे चारों डाकू ह्वेनसांग के शिष्य वन गये। उन्होंने वौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

इन सव कठिनाइयों को पार कर ह्वेनसांग कन्नौज की सीमा पर पहुँचा। महामंत्री सिंहनाद ने यात्री के आने की सूचना सम्राट् हर्ष को दी। वे तुरन्त रथ में वैठ कर चीनी

यात्री का स्वागत करने पहुँचे।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने मेहमान का दिल से स्वागत किया और उसे पुष्पहार पहनाये। ह्वेनसांग अपना यह स्वागत देख गद्गद् हो गया। नगर के गण्यमान नागरिकों ने उस पर फूल बरसाकर जय-जयकार के नारे लगाये। इसके बाद सम्राट् उसे अपने रथ में बैठा कर महल की ओर चल पड़े। मार्ग में सड़क के दोनों ओर अपार भीड़ विद्वान् चीनी यात्री का स्वागत करने के लिए उमड़ पड़ी थी।

जगह-जगह पर चीनी यात्री के सम्मान में स्वागत सभाएँ और आयोजन किये गये। इस समय तक बौद्ध धर्म का पतन हो चुका था और हिन्दू धर्म ने फिर से अपनी धाक जमा ली थी। देश में जब भी कोई बौद्ध विद्वान् आता तो आर्य विद्वानों की भौंहें तन जातीं और वे उसे वाद-विवाद में हराने की कोशिश करते।

एक दिन ह्वेनसाग को भी आर्यभट्ट ने ललकारा। उस समय सारे भारत में उनका नाम फैल चुका था। ह्वेनसाग उनसे वाद-विवाद के लिए तैयार हो गया। लेकिन प्रश्न उठा कि जीत-हार का फैसला ;कौन करेगा ? आखिर राज्यश्री को यह काम सौंपा गया। वह बड़ी विदुषी थी।

दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में शास्त्रार्थ शुरु हुआ। उस समय के दो तेजस्वी पंडितों की चर्चा सुनने के लिए, नगरी के सभी विद्वान वहाँ आ गये। दोनो शात भाव से आसनों पर बैठे थे।

दोनों के मुख पर तेज था। दोनों मद-मद मुस्करा रहे थे। वे सावधान होकर एक-दूसरे के सवालो का जवाब दे रहे थे। बीच में बैठी थी राज्यश्री, हार-जीत का फैसला करने के लिए। ह्वेनसाग का पक्ष था—मन की शुद्धि ही मोक्ष है।

आर्यभट्ट कहते थे—'काया को यातनाओं की आँच में तपाये वगैर मोक्ष कहाँ ?

इस तरह वाद-विवाद होते कई दिन बीत गये। हर रोज़ दोनों नये-नये तर्क पेश करते। परन्तु एक दिन ऐसा हुआ कि आर्यभट्ट ह्वेनसांग की बात का जवाब न दे सके। राज्यश्री ने तुरन्त कहा—आर्यभट्ट हार गये। राज्यश्री कितनी महान् थी ! अपने गुरु आर्यभट्ट को हारते देखकर भी सच से नहीं डिगी। ह्वेनसांग ने कहा था, "मैं हार गया तो हिन्दू धर्म ग्रहण करूँगा।" आर्यभट्ट ने कहा था, "मैं हार गया तो तुम्हारा शिष्य हो जाऊँगा।"

शर्त के अनुसार आर्यभट्ट ह्वेनसांग का शिष्य बनने को तैयार हो गए। परन्तु पहले राज्यश्री ने कहा, "मेरे गुरु हारे, मैं नहीं हारी। आपकी जीत आधी जीत है। मुझे हरा देंगे तभी वह पूरी होगी। तभी मेरे गुरु आपके शिष्य बनेंगे।"

ह्वेनसांग झिझका। पुरुष नारी से विवाद नहीं करते। पर राज्यश्री क्या साधारण नारी थी ! वह नहीं मानी। ह्वेनसांग को उससे वाद-विवाद करना पड़ा। परन्तु अन्त में वह हार गई। आर्यभट्ट ह्वेनसांग के शिष्य बन गये और वह मित्रसेन के नाम से मशहूर हुए। अब तो सारे उत्तर भारत में बौद्ध धर्म की फिर से धाक् बैठ गई।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने विजयी ह्वेनसांग को राजसभा में बुलाया। उससे प्रेमपूर्वक मिले। इस प्रकार चीनी यात्री के प्रति सम्राट् के दिल में आदर और प्रेम बढ़ता ही गया। वे ह्वेनसांग को अपना घनिष्ठ और विश्वसनीय मित्र मानने लगे।

इन्हीं दिनों ह्वेनसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय को देखने की इच्छा प्रकट की। सम्राट् हर्ष नें उसकी बात मान ली और स्वयं उसके साथ चल पड़े। उनके साथ दिवाकर मित्र भी थे।

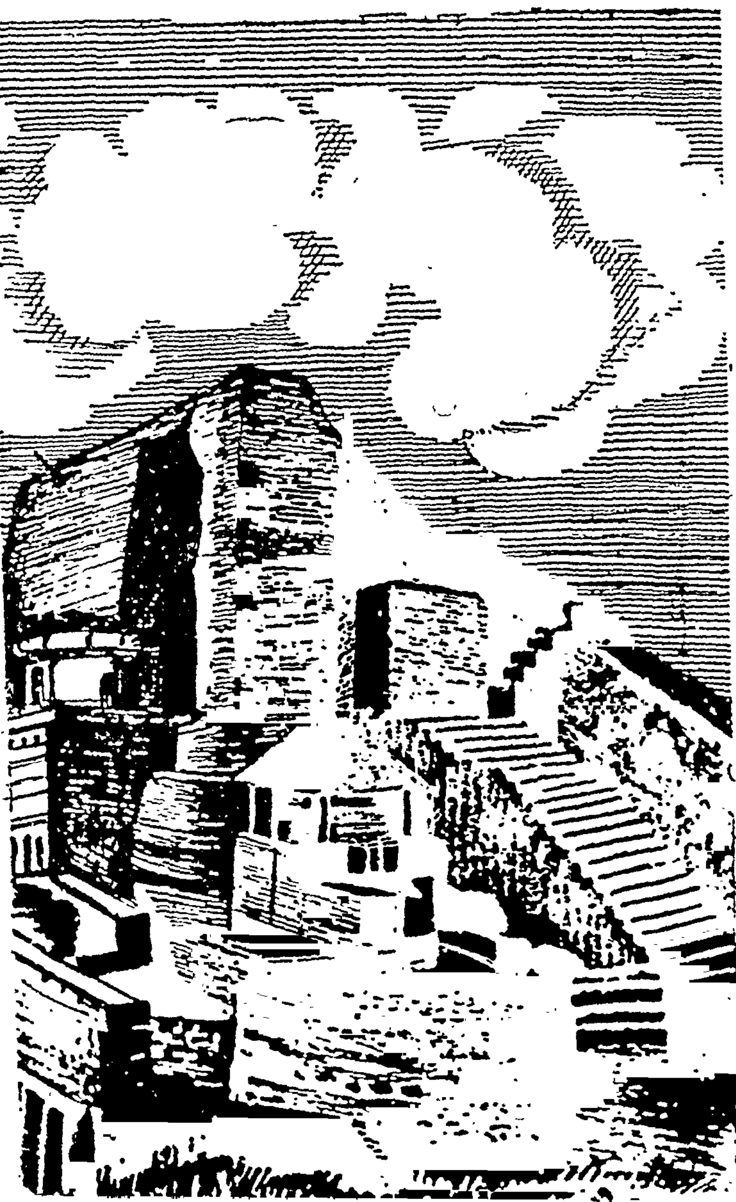
: ८ :

नालन्दा में

नालन्दा का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय आजकल के पटना शहर से चौतीस मील दक्षिण में स्थित बडगाँव नामक स्थान पर था। आज भी यहाँ नालंदा विश्वविद्यालय के खण्डहर देखे जा सकते हैं।

नालन्दा विश्वविद्यालय तब सारे संसार में प्रसिद्ध था। कोरिया, जापान, चीन, लंका, तिब्बत, मलाया, बर्मा, हिन्द-एशिया और तुर्किस्तान आदि दूर-दूर के देशों से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद जब ये विद्यार्थी अपने देशों में जाते थे, तब उनका वहाँ बडा सम्मान होता था। राजा लोग राज सिंहासन पर खड़े होकर उनका सम्मान और आदर करते थे। नालन्दा में पढे ये विद्यार्थी 'नालन्दा बन्धु' कहलाते थे। कोई-कोई व्यक्ति तो सम्मान पाने के लालच से अपने आपको झूठ-मूठ ही नालन्दा-बन्धु कह दिया करते थे।

उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। चारों ओर चार कोनो वाली और बड़ी-बड़ी आठ दीवारें थीं और पहाड की चोटी के समान नुकीले और ऊँचे-ऊँचे चौमंजिले मठ थे। आकाश से बातें करते हुए इसके बुर्ज और कंगूरे ऐसे जान पड़ते थे, मानो प्रात काल के कुहरे मे मुँह छिपा रहे हों। भवन की खिडकियाँ इतनी ऊँची थी कि वहाँ से मेघों का आना-जाना साफ दीख पडता था। इसके



अन्दर तरह-तरह के चमकीले रंगों से रंगी हुई और बेल-बूटों से सुशोभित बड़ी-बड़ी कोठरियाँ थीं।

विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ-साथ हर प्रकार की सुविधाएँ मुफ्त मिलती थी। खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए कपड़े, पढ़ने के लिए पुस्तकें, बीमारों के लिए दवाइयाँ आदि अनेक प्रकार की आवश्यक चीजें पढ़ने वालों को दी जाती थीं। योग्य विद्यार्थी को अच्छी कोठरी और शेष सभी को साधारण कोठरी रहने को मिलती थी।

इस महान् विद्यालय का सारा खर्च विद्या-प्रेमी राजाओं और दानी धनिकों के दान से चलता था। इसके अलावा बड़े-बड़े राजाओं ने इसके लिए सौ से अधिक गाँव जागीर के तौर पर दे दिये थे। सुमात्रा के राजा बाल पुत्रदेव ने भी अपने राज्य के पाँच गाँव नालन्दा के खर्च के लिए दान दिये थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय में सौ से अधिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इन विषयों को पढ़ाने वाले एक हजार से अधिक विद्वान आचार्य वहाँ थे। शीलभद्र वहाँ के प्रधान आचार्य थे। इनके अतिरिक्त दूसरे प्रसिद्ध आचार्य थे—धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिन्मित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध आदि। तिब्बत के लामा सम्प्रदाय के संस्थापक पद्मसम्भव भी इसी विद्यालय में शिक्षा पाते थे।

विश्वविद्यालय छोड़ते समय आचार्य लोग छात्रों को उपदेश देते थे। उन्हें उनके भावी जीवन में सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देते थे। उनके उपदेशों में से एक उपदेश था—"क्रोध को क्षमा से जीतो। बुरे मनुष्य पर अच्छी बातों से विजय पाओ। लालची को दान से जीतो। झूठ बोलने वाले को सत्य बोल कर जीतो।"

नालन्दा के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे मठ थे। उनके बीच-बीच

में सभास्थान और विद्यालय बने थे, जो समाधियों और मन्दिरों से घिरे थे। यहीं आचार्यों के चौमंज़िले ऊँचे-ऊँचे मकान थे। उन मकानों की शोभा देखते ही बनती थी। उनमें रंग-बिरंगे साज-सामान लगे थे। अनेकों प्रकार के कीमती रत्न उनकी दीवारों में जड़े थे। आमों के यहाँ अनेकों बाग भी थे। यहाँ के तालाबों में खिले नीले कमल बड़े सुन्दर लगते थे।

विश्वविद्यालय का अनुशासन बहुत ही सन्तोषजनक था। यहाँ के नियम बड़े कड़े थे। हर एक काम के करने में समय की पाबन्दी का खास तौर से ध्यान रखा जाता था। हर रोज़ सुबह एक बड़ा घण्टा बजता था, जो नहाने का समय बताता था। ठीक उसी समय चारों दिशाओं से छात्रगण हज़ारों की संख्या में अपने-अपने कपड़े लिये तालाब की ओर चल पड़ते थे। नहाने के लिए ऐसे दस तालाब वहाँ बने हुए थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय का एक विशाल पुस्तकालय भी था। यह नौ मंज़िला था और हवा से बातें करता था। उसकी ऊँचाई तीन सौ फुट थी। इस पुस्तकालय में बौद्ध धर्म के सभी ग्रन्थों के अलावा अन्य अनेक दुर्लभ पुस्तकें भी थीं। सारी दुनिया में उस समय ऐसा पुस्तकालय कहीं भी नहीं था।

यह सारा विश्वविद्यालय एक बड़ी दीवार से घिरा हुआ था। इसमें प्रवेश करने का केवल एक ही दरवाज़ा था। उस द्वार पर एक पंडित बैठता था। वह द्वार-पंडित कहलाता था। विश्वविद्यालय में भर्ती होने वाले विद्यार्थी को पहले उसके पूछे सवालों का जवाब देना पड़ता था। ये सवाल बड़े मुश्किल होते थे। केवल कुछ ही विद्यार्थी उनका उत्तर दे पाते थे। इस प्रकार सफल विद्यार्थी को ही विश्वविद्यालय में भर्ती किया जाता था।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ह्वेनसांग के साथ नालन्दा विश्वविद्यालय

में पधारे। ह्वेनसांग यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आये थे और सम्राट् विश्वविद्यालय का निरीक्षण करना चाहते थे। उनके स्वागत में सारा विश्वविद्यालय सजाया गया था। भिक्षुओं और विद्यार्थियों ने अनेक प्रकार के वाद्य बजाकर दोनों मेहमानों का स्वागत किया। विश्वविद्यालय के मुख्य आचार्य शीलभद्र ने सम्राट् को पुष्पहार पहना कर प्रसन्नता प्रकट की। हर्षवर्द्धन ने विश्वविद्यालय को घूम-घूम कर देखा। नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्ध और वैदिक दोनों प्रकार की विद्याओं की साथ-साथ पढ़ाई देख कर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुए। देशी व विदेशी विद्यार्थियों में किसी भी प्रकार का भेद-भाव न देख कर सम्राट् को बहुत खुशी हुई।

प्रधान आचार्य शीलभद्र ने ह्वेनसांग को योग्य जिज्ञासु समझ कर दाखिल कर लिया। साथ ही उन्हें अनेक सुविधाएँ भी प्रदान कीं।

अन्त में, विश्वविद्यालय की ओर से सम्राट् के सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया गया। सम्राट् ने अपने भाषण में आचार्य शीलभद्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की। विश्वविद्यालय के खर्च को चलाने के लिए उन्होंने अपने राज्य में से सौ गांव भी दान दिये। सम्राट् के दान पर उपस्थित जन-समुदाय प्रसन्न हो उठा। आचार्य शीलभद्र ने भी अच्छा अवसर देखकर सम्राट् हर्षवर्द्धन को 'शिलादित्य द्वितीय' की उपाधि से विभूषित किया। सम्राट् ने सिर झुका कर आचार्य का प्रसाद स्वीकार किया। इसके बाद इतिहास में सम्राट् हर्षवर्द्धन के नाम के साथ 'शिलादित्य द्वितीय' और जोड़ा जाने लगा।

इसके बाद सम्राट् सबसे स्नेहपूर्ण विदा लेकर कन्नौज लौट आये।

: ६ :

सोने में सुहागा

रास्ते में लौटते हुए सम्राट् अचानक एक घने जंगल में भटक गये। बड़ी देर तक इधर-उधर घूमते रहे। गर्मी काफी थी और भूख से उनका मन व्याकुल था, गला सूखा जा रहा था।

इसी समय उन्हें दूर एक झोंपड़ी दिखाई दी। उनके कदम उसी ओर चल पड़े।

बड़ी देर तक चलने के बाद वे एक बड़े आश्रम के पास आकर रुके। तभी किसी ने मधुर और बारीक आवाज़ में टोका, "पथिक तुम कौन हो ? तुम्हें क्या चाहिए ?"

आवाज़ सुन कर सम्राट् के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह आवाज़ पिंजड़े में बंद एक मैना की थी। उसकी इतनी शुद्ध संस्कृत वाणी सुन कर सम्राट् ठगे से रह गये। उनकी भूख-प्यास वहीं गायब हो गई।

उन्होंने बड़ी देर तक कौतूहल से मैना से बातचीत की। मैना ने एक पंडित की तरह सम्राट् के प्रश्नों के उत्तर दिये। चकित सम्राट् सोचने लगे, जिसके आश्रम के पिंजड़ों में बंद पक्षी इतने चतुर और विद्वान हैं, उनका मालिक कितना विद्वान होगा !

तभी एक तेजस्वी पुरुप हाथ में पूजा का थाल लिये हुए उस आश्रम में आया। पूछने पर मालूम हुआ कि वह ही आश्रम का स्वामी है। महाकाली का भक्त है और पूजा करके लौटा है।

घंटों तक दोनों में घुल-मिल कर बातें होती रही। सम्राट् पर उस तेजस्वी पुरुष की बातों का बड़ा प्रभाव पड़ा। मन ही मन उन्होंने उसे अपना सखा मान लिया। बार-बार आग्रह करने पर सम्राट् नें उसके साथ भोजन किया।

भोजन कर चुकने के बाद जब समाट् विश्राम करने लगे तभी मैना ने अपने स्वामी से कहा, "क्या आप अपने घर आये मेहमान को कविता नहीं सुनायेंगे ?"

सम्राट् ने आश्चर्य से पूछा, "क्या आप कविता भी लिखते हैं ?"

"हाँ", उस तेजस्वी पुरुष ने सिर हिला कर कहा, "मुझे थोड़ा-बहुत शौक है, इसलिये कभी-कभी लिख लेता हूँ।"

"तो सुनाइये।" सम्राट् ने आग्रह किया।

प्रतिभावान् पुरुष ने दो-तीन कविताएँ सुना दी। सुनकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कवि की पीठ ठोकी और उसकी कल्पना को बार-बार सराहा।

अपनी कविता पर इतनी प्रशंसा और सम्मान पाकर कवि को अपार सुख हुआ। साथ ही उसकी झिझक भी मिट गई। उसने अपना हाल ही में रचा ग्रन्थ हर्ष के सामने रख दिया। उसे पढ़कर तो हर्ष वाह-वाह कर उठे। बोले, "तुम वास्तव में गुदड़ी के लाल हो। आज से तुम मेरे दरबार में रहोगे। मैं तुम्हे राजकवि का पद देता हूँ।"

कवि सम्राट् का आग्रह न टाल सका। यह कवि 'महाकवि बाणभट्ट' के नाम से संसार के साहित्य मे विख्यात है। उसका लिखा हुआ यह ग्रन्थ महाकाव्य था, जो कादम्बरी के नाम से मशहूर है।

सम्राट् हर्ष विद्याप्रेमी थे। वे स्वय साहित्य और कला मे


कादम्बरी

रुचि रखने के साथ विद्वानों का आदर भी करते थे। उन्हें संगीत और कविता से प्रेम था। वह स्वयं भी कवि थे और उन दिनों 'प्रियदर्शी' नामक काव्य लिख रहे थे।

सम्राट् के इन्हीं गुणों को देख वाणभट्ट उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसे पाकर सम्राट् बहुत खुश हुए। उनकी कवि-कल्पना को बल मिला। सोने में सुहागे का सा काम हुआ। वे वाणभट्ट को साथ लेकर कन्नौज चले आये। यही कवि उनका सलाहकार भी बना, जो सम्राट् को गुप्त बातों में सलाह देता था।



: १० :

कोई भेद नहीं

सर्दी का मौसम था। ठंड इतनी थी कि शरीर ठिठुर जाता था। हवा जैसे काटने को दौड़ती थी। तिस पर तेज आँधी के साथ घना अँधेरा छा रहा था। आकाश में बादल गरज रहे थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक रही थी। रात आधी से अधिक ढल चुकी थी। कन्नौज नगर के बाहर हरिजनों की अनेक झोंपड़ियाँ तारों की तरह बिखरी हुई पड़ी थीं, जो आँधी के तेज थपेड़ों से हिल उठती थीं। उनमें से एक झोंपड़ी में से छनकर प्रकाश बाहर को आ रहा था। इस झोंपड़ी में एक बच्चा रो रहा था। बच्चा भूखा था। उसकी माँ उसे प्यार से समझा रही थी, "बेटा ज़िद न कर; अब सो जा। कल तेरे पिताजी तुझे बहुत सारा खाने को ला देंगे।"

लेकिन बच्चे पर माँ की इन बातों का कोई असर न हुआ। उसके पेट में तो चूहे कूद रहे थे। फिर उसे बिना खाये चैन कैसे पड़ता! वह रोता ही रहा।

झोंपड़ी के बाहर किसी के आने की आहट सुनाई दी। उस स्त्री ने चौंक कर पूछा, "कौन है?"

"एक पथिक।" उत्तर मिला।

"क्या चाहिए?" अन्दर से आवाज़ आयी।

"मुझे आश्रय चाहिये। आँधी और वर्षा घिर आई है। धरती जैसे डोलना चाहती है और आसमान फट पड़ने के लिए बेचैन है।" पथिक ने कहा।



आगन्तुक की वातें सुन कर उस स्त्री ने अपने पति को जगाया। वह हड़वड़ा कर उठा और वाहर दरवाज़े की ओर लपका। उसने विजली की चमक में देखा, गठे हुए शरीर का एक युवक खड़ा है। उसके कपड़े पुराने और फटे हुए हैं और दाढ़ी वढ़ी हुई है, लेकिन चेहरे पर अपार तेज है। वह उसे अन्दर ले आया।

एक फटे-पुराने टाट की ओर इशारा करके उसने पथिक को वैठने के लिए कहा और उसकी सेवा में हाथ जोड़ कर खड़ा रहा।

पथिक ने टाट के टुकड़े पर विना किसी संकोच के बैठ कर झोंपड़ी को चारों ओर से वड़े ध्यान से देखा। झोंपड़ी का छप्पर टूट चुका था और जगह-जगह से छलनी हो गया था। जव पानी वरसता तो खड़े रहने के लिए भी जगह न रहती। चारों ओर मिट्टी के टूटे वर्तन विखरे पड़े थे। एक कोने में वने चूल्हे में ठंडी राख पड़ी थी। ऐसा मालूम होता था कि कई दिन से इस घर में भोजन नहीं वना। इसी समय सोया हुआ वच्चा जागकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

पथिक ने उसकी चीख सुनी तो उससे रहा न गया। वह घर के मालिक से वोला, "भाई, वच्चा इतने ज़ोर से क्यों रो रहा है ? क्या वीमारी है उसे ? वैद्य को क्यों नहीं दिखाते ?"

तव तक स्त्री ने उठ कर वालक को चुप कराने का प्रयत्न किया, पर वह रोता ही रहा। पिता ने उस वालक की ओर देख कर उदास भाव से पथिक से कहा, "वैद्य रोग का इलाज कर सकता है, लेकिन पेट की भूख शांत करने की दवा उसके पास कहाँ ?"

पथिक ने सुनकर आश्चर्य से कहा, "तो क्या यह वच्चा

भूख से बिल-बिला रहा है ? फिर आप इसे खाना क्यों नहीं देते ?"

पिता का गला भर आया। वह बोला, "कहाँ से खिलाऊँ इसे ? घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है। हम तीनों कई दिन से भूखे है।"

पथिक चौंक पड़ा। वह धीरे से बुदबुदाया, "कई दिन से भूखे......" फिर उस आदमी से बोला, "आप क्या काम करते हैं ? आपको उस काम से इतना भी प्राप्त नहीं होता कि तीन जीवों का पेट भर सको ?"

पथिक के सवालों को सुन कर उस आदमी के मुख पर निराशा छा गई। उसका गला रुँध गया। वह विनम्र आवाज में बोला, "मैं कवि हूँ, कविता करता हूँ। इसी साधना में मेरा सारा जीवन व्यतीत हुआ है।"

"लेकिन कविता से तो पेट नहीं भर सकता ! वह तो आत्म-सुख ही दे सकती है, पेट की आग बुझाना उसका काम नहीं।" पथिक ने कहा।

"मैंने तो अपना सारा जीवन काव्य-रचना में ही बिताया है। इसके सिवा मैं कुछ भी दूसरा काम नहीं कर सकता।" वह आदमी निराश-सा होकर बोला।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"दिवाकर।"

"तुम सम्राट् के पास क्यों नहीं जाते ? वे अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे।" पथिक ने समझाया और पोटली खोल कर कुछ मिठाई तीनों में बांट दी।

उस मनुष्य ने मिठाई का एक टुकड़ा मुँह में डाल कर बात का छोर पकड़ते हुए कहा, "मैं जानता हूँ कि हमारे सम्राट् हर्षवर्द्धन कविता-प्रेमी हैं। मैं अछूत हूँ, हरिजन हूँ। उन तक पहुँचने में डरता हूँ। मुझे डर है कि कहीं वे मेरा अपमान

न कर दें। यदि उन्होंने मेरा उचित आदर न किया तो मेरे मन को बड़ी ठेस पहुँचेगी और मुझे दुःख होगा।"

पथिक ने झोंपड़ी वाले की बात बड़े ध्यान से सुनी। उस मन शोक और दया से भर गया। उसके मुख पर करुणा भाव झलक आये। वह मुस्कराकर बोला, "सम्राट् हर्षवर्द्धन मनुष्य के गुणों की कद्र करने वाले हैं। फिर वह चाहे बड़ा चाहे छोटा, उनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं। वे सब को सम रूप से देखते हैं। उनके यहाँ जाति-पाँति का कोई सवाल नहीं उठता। वे सब धर्मों के प्रति उदार हैं।"

"नहीं-नहीं, मुझे डर लगता है। अगर सम्राट् को मे कविता पसन्द नहीं आई तो मेरा अपमान भी हो सकता है गरीब के पास और रखा ही क्या है? उसे अपनी इज्ज प्यारी होती है। अगर सम्राट् ने मुझे न चाहा तो मेरा दि टूट जायेगा और मैं कहीं का न रहूँगा।"

पथिक बोला, "तुम अपने आपको नीच समझते हो, य तुम्हारी भूल है। तुम एक बार भी उनके दरबार में जाक कविता पाठ करते तो सम्राट् तुम्हारा जरूर आदर करते।"

दिवाकर ने पथिक की ओर घूर कर देखा जैसे उसे कु और संदेह हुआ हो। वह बोला, "क्या बात है पथिक, सम्राट् की बहुत तरफदारी कर रहे हो? मालूम प सम्राट् की तुम पर असीम कृपा है।"

पथिक हँस पड़ा। बोला, "सभी गुणियों पर कृपा है।"

"तुम में क्या गुण है?"

"मैं शिल्पकार हूँ।"

"ओह! तो क्या सचमुच सम्राट् मेरा आ

"क्यों नहीं!" पथिक ने उसे सान्त्वना

धीरज भी जाता रहा। अन्त में वह सैनिकों के साथ साहस कर सम्राट् की राजसभा तक चला गया।

राजसभा में पहुँचते ही दिवाकर की दृष्टि राज-सिंहासन पर वैठे सम्राट् पर पड़ी। उन्हें देखते ही उसका सिर चकराने लगा। उसके दिमाग में रात वाले पथिक का चेहरा ताज़ा हो आया। वह मन ही मन वड़वड़ा उठा, "तो, क्या रात वाले पथिक सम्राट् ही थे?" वह तुरन्त सिंहासन के निकट जा पहुँचा। वहाँ उसने सम्राट् को झुक कर प्रणाम किया।

सम्राट् ने सिंहासन से उठ कर दिवाकर को गले लगाया। दिवाकर यह सव देख गद्गद् हो उठा। हर्ष ने हँस कर कहा, "दिवाकर, सम्राट् गुणी जनों का आदर करते हैं। वह स्वयं कवि हैं। कवि की मनोदशा को वह अच्छी तरह जानते हैं। आज से तुम मेरी राजसभा में रहोगे। अव तुम खूव कवितायें लिखो और नाम कमाओ। मुझे तुम्हारी उन्नति देखकर वहुत खुशी होगी।"

सम्राट् नें फिर सारे सभासदों को सम्वोधित करते हुए कहा, "सभासदो! कल मैंने झोंपड़ी में एक अनमोल रत्न पाया है। वह आपके सामनें प्रस्तुत है। वह है हमारी नगरी का मौन साधक प्रतिभा सम्पन्न कवि दिवाकर! सूर्य की भाँति इसकी आभा भी चतुर्दिक फैले, इसी विचार से मैं इसे यहाँ ले आया हूँ। अव ये भी आपकी सेवा में रहेंगे। आपके मित्र वनेंगे।"

अपनी वात पूरी करके सम्राट् सिंहासन पर वैठ गये। इतने में ही वाणभट्ट और मयूर कवि सम्राट् के पास आये। दिवाकर को उन दोनों ने वारी-वारी से गले लगाकर प्रसन्नता प्रकट की। अपनी गरीवी का अन्त निकट देखकर दिवाकर की खुशी का ठिकाना न रहा।



पकड़ने के लिए कसमसा उठे। उन्होंने सेनापति सिंहनाद को बुलाकर तुरन्त सेना तैयार करने का हुक्म दिया।

विशाल सेना के साथ हर्ष ने दूसरे ही दिन बंगाल की ओर कूच किया। पहले ही दिन की बात है, उन्होंने विश्राम के लिए सरस्वती नदी के किनारे सेना के साथ पड़ाव डाल दिया था। तभी खबर सुनकर गांव का सरपंच उनके स्वागत के लिए आया। सरपंच ने पुष्पहार पहना कर सम्राट् को एक अँगूठी भेंट की। अँगूठी उँगली में पहनते हुए हर्ष के हाथ से जमीन पर गिर पड़ी।

सिंहनाद देखकर कांप गया। बोला, महाराज ! अँगूठी हाथ मे गिरी, यह तो बड़ा अपशकुन हुआ। पता नही शशांक से युद्ध का क्या परिणाम निकलता है ?"

लेकिन सम्राट् हर्ष समय के बड़े अच्छे पारखी थे। उन्होंने उस अँगूठी को उठाया और बोले, "यह बडी शुभ शकुनी अँगूठी है। इसकी जैसी छाप भूमि पर लगी है, वैसी मेरी छाप समूचे भारत पर पड़ेगी।"

सम्राट् के इस उत्तर से सैनिकों का साहस बढा। वे बडे उत्साह से आगे बढ़े। सैनिक रुके नही, वे चलते ही रहे। रात का पहला पहर था। शशांक की सैनिक टुकडी एक मैदान के बीचों-बीच थी। थकान के कारण सब सिपाही चुपचाप पडे थे। केवल हाथियों के घंटों की आवाज या पीलवानो के हुक्के का गुड़गुड़ाना ही कभी-कभी सुनाई पड जाता था। उसी समय हर्ष की सेना ने आगे बढ़कर शशाक की फौज को घेर लिया और 'हर हर महादेव' का घोष करते हुए उस पर टूट पडे।

शशांक की सेना बहुत थकी हुई थी। उसमें इतना दम नही था कि वह हथियार उठा सके। सैनिको ने उसे एकदम तहस-नहस कर दिया। लेकिन शशाक अब भी अपने सिपाहियों को बढ़ावा देता हुआ चिल्ला रहा था। सम्राट् हर्ष की तलवार का

जौहर देखने लायक था। उसने अपने किरमिजी रंग के घोड़े को शशांक के हाथी पर अड़ा दिया और साध कर बर्छा चलाते हुए कहा, "लौहपुर की लूट का माल लेते जाओ।"

बर्छे का वार अचूक था। शशांक लुढ़क कर अपने ही हाथी के पैरों तले कुचला गया और दूसरे ही क्षण उसकी बोटी-बोटी पिस गयी।

यह सम्राट् हर्ष की पहली विजय थी। इस प्रकार उसने अपने भाई राज्यवर्द्धन की मृत्यु का बदला शशांक से लिया। कन्नौज लौटने पर लोगों ने उनका दिल खोलकर अभिनन्दन किया। सारे राज्य में विजय के उत्सव की बड़ी धूम-धाम रही। जगह-जगह नाच-तमाशे और नाटक खेले जाने लगे।

लेकिन इस विजय से ही हर्षवर्द्धन ने संतोष नहीं किया। उसने अपने शत्रुओं का नाश करने के लिए पूरी तरह से कमर कस ली।

लगातार पाँच वर्षों तक वह लड़ाइयों में उलझा रहा। उसने अनेक राजाओं को हरा कर उन्हें अपने अधीन होने के लिए बाध्य किया। लेकिन किसी राजा का राज्य अपने राज्य में नहीं मिलाया। केवल उनसे हर साल कर के रूप में कुछ रकम तय करके छोड़ दिया।

इस तरह उसने अपना राज्य विस्तार हिमालय से लेकर नर्मदा नदी तक कर लिया। पाँच वर्षों के समय में वह लड़ाइयों में इतना उलझा रहा कि सेना के हाथियों पर से हौदे तक न उतरे। सैनिक अपने रक्षा कवच न उतार सके। समस्त उत्तरी भारत उनके नाम से काँपने लगा।

सम्राट् लगातार की लड़ाइयों से ऊब कर कन्नौज लौटा। अब उसने जनता की भलाई के कामों की ओर ध्यान देना उचित समझा।

: १२ :

अहिंसा का बल

दोपहर हो चली थी। सूरज ठीक सिर पर था, लेकिन धूप में गर्मी नहीं थी। वह भली मालूम हो रही थी। सम्राट् हर्ष-वर्द्धन महल की खिड़की में खड़े कुछ सोच रहे थे। नीचे बाग में हवा से सैकड़ों फूल झड़कर हरी-हरी घास पर बिछ गये थे। ऐसा लगता था जैसे रंग-बिरंगा कालीन बिछा हुआ हो। लेकिन सम्राट् का ध्यान प्रकृति की बिखरी हुई इस सुन्दरता की ओर नहीं था। वे किसी गहरी सोच में डूबे हुए थे। महल में दिवाकर मित्र के साथ राज्यश्री और ह्वेनसांग का आना वे न जान सके। तीनों ने उनके मुख पर छाये हुए चिन्ता के भावों को पढ़ लिया। वे आकर चुपचाप खड़े हो गये।

सम्राट् ने स्वयं ही कुछ समय बाद राज्यश्री से कहा, "बहन, बड़ी चिन्ता की बात है कि बंगाल का वसुमित्र अभी तक पकड़ा नहीं जा सका। उधर वल्लभी का राजा फिर अपना सिर उठाये हमें ललकार रहा है। उसने हमसे मित्रता के सम्बन्ध तोड़ दिये हैं। दक्षिण में महाराष्ट्र का राजा चालुक्य-राज पुलकेशिन हमारा सामना करने के लिए तैयार है। हमारी सेना नर्मदा के उस पार उतरना चाहती है, पर चालुक्य की सेना नर्मदा के उस पार खड़ी हमारा इन्तजार कर रही है। मैं इन सब शत्रुओं पर विजय पाने को बेचैन हूँ।"

राज्यश्री जो अब बौद्ध धर्म के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर चुकी थी, बोली, "भैया, कहीं शस्त्र से भी सच्ची विजय



सम्राट् हर्षवर्द्धन ने दिवाकर मित्र की बात पर शंका करते हुए पूछा, "गुरुवर, फिर शक्ति का सिद्धान्त क्या गलत है ? शक्ति न हो तो वह मनुष्य ही क्या ? तब पौरुष की बात करना ही व्यर्थ है ।"

हर्ष की बातें सुनकर दिवाकर मित्र हँस पड़े, "नहीं सम्राट्, मैंने यह कब कहा कि मनुष्य में शक्ति नहीं होनी चाहिए या उसे शक्ति का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए । शक्ति का सहारा अवश्य लेना चाहिये, लेकिन वह दुष्ट और पापी का अन्त करने के लिए हो, साम्राज्यों के बढ़ाने के लिये नहीं ।"

सम्राट् ने दिवाकर मित्र के वचनों को सुना तो वे निराश हो गये । खिन्न होकर उन्होंने कहा, "अगर यह बात मान लूँ तो फिर मेरी सारी पृथ्वी को जीतने की इच्छा धूल में मिल जायेगी । मैं अपने दुश्मनों का दमन न कर सकूँगा । पुलकेशिन का नाश करने की मेरी प्रतिज्ञाएँ पूरी न हो सकेंगी । मेरे शत्रु मुझे निर्बल समझ कर राज्य पर बार-बार आक्रमण करेंगे और मैं यूँ ही देखता रह जाऊँगा । नहीं-नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा । मैं जीते-जी अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी न मारूँगा ।"

इस बार सभी गम्भीर हो गये । दिवाकर मित्र हर्ष के तर्कों का उत्तर सोचने लगे । राज्यश्री ने अपने नेत्र बन्द कर भगवान् से हर्ष को सद्बुद्धि देने की प्रार्थना की । तभी पास बैठे भिक्षु ह्वेनसांग (जोकि अभी हाल ही में नालन्दा विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण करके लौटे थे) कुछ सोचकर एकाएक चौंक पड़े । उनकी आँखें चमक उठीं । वे प्रसन्न होकर बोले, "आपकी सारी पृथ्वी को जीतने की प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होगी, सम्राट् ! आपके शास्त्र सारे संसार को कुटुम्ब मानते हैं, सबसे परिवार की भाँति प्रेम करने को कहते हैं । इस प्रकार आप सब राजाओं को प्रेम

भाव से जीत सकते हैं। सब आपके शीघ्र ही मित्र हो जायेंगे। आपके देश में सम्राट् अशोक ने ऐसा ही किया था। उसने इसी सिद्धान्त से चीन, लंका, बर्मा और स्याम आदि देशों से मित्रता की थी।"

"लेकिन उनकी तो बात अलग थी। शत्रुओं ने उनकी तलवार की मार से डर कर ही आधीनता स्वीकार की थी और प्रेम का नाता जोड़ा था।" सम्राट् हर्ष चिन्तित होकर बोले।

ह्वेनसांग ने कहा, "सम्राट् आपकी भी विजयी सेनायें सब ओर युद्ध करने के लिए गई हुई हैं। उसकी सूचना एक दो दिनों में आती ही होगी। हर तरफ से आपको विजय की ही खबर मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

और वही बात हुई। ह्वेनसांग अपनी बात कह रहे थे कि सेनापति सिंहनाद ने उपस्थित होकर कहा, "महाराज अभी-अभी खबर मिली है कि बंग-नरेश वसुमित्र युद्ध में खेत रहा और सारी बंग सेना काट दी गई।" यह सुनकर सम्राट् हर्षवर्द्धन प्रसन्न हो उठे। उन्होंने सेनापति सिंहनाद को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

इसके तुरन्त बाद सेनापति भण्डि ने भी आकर कहा, "समाचार आया है कि वल्लभी के राजा पराजित हो गये हैं। उनके हज़ारों सैनिक नावों में बैठकर नदी पार करने लगे थे लेकिन आंधी से बहुत-सी नावें उलट गईं और अधिकांश सैनिक काल के गाल में समा गए।

सम्राट् हर्षवर्द्धन की बाछें खिल उठीं। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। कुछ समय के बाद फिर सेनापति भण्डि ने कहा, "सम्राट्, वल्लभी के राजा को हमारी सेना ने बन्दी बना लिया है, पर वल्लभी के नागरिक अभी भी विद्रोही हैं।

उनके विद्रोह को पूरी तरह से कुचला नहीं जा सका है। लाख प्रयत्न करने पर भी उन पर काबू पाना असम्भव लगता है।"

"वह क्यों ?" सम्राट् ने निराश होकर पूछा।

भण्डि ने कहा, "वल्लभी की जनता का अपने राजा पर अपार स्नेह है। राजा भी प्रजापालक है। दोनों एक-दूसरे को जी-जान से चाहते हैं। इसलिए राजा के कैद होते ही वल्लभी के तमाम नागरिक विद्रोह कर बैठे हैं।"

भण्डि की बात सुनकर राजश्री कह उठी, "देखो भैया, प्रेम का प्रभाव ! एक व्यक्ति के लिए देश के लाखों लोग जीवन बलिदान करने के लिए तैयार हो गये।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन की प्रसन्नता धीरे-धीरे खत्म हो चली। वे विचारों में खो गये। उनके मुख पर एक बार फिर चिन्ता की रेखायें प्रकट हो गईं। सम्राट् को चिन्तित जानकर ह्वेनसांग बोला, "सम्राट् चिन्ता न करें। आपकी कठिनाई का हल अपने आप ही हो गया है। आपके देश में सम्राट् अशोक ने भी कलिंग को जीता था। उसे भी पूरी विजय नहीं मिली थी, क्योंकि कलिंग के नागरिक विद्रोही बने रहे। सम्राट् अशोक ने तब अपनी नीति में परिवर्तन कर अहिंसा और प्रेम का मार्ग अपनाया था। तो सम्राट्, अब आप भी वल्लभी राजा और जनता पर प्रेम व अहिंसा के बल से विजय पाने की कोशिश करें।"

ह्वेनसांग के मौन होते ही सम्राट् के मुख पर मुस्कराहट दिखलाई देने लगी और उन्होंने घोषणा की, "आप सब मेरे हितैषी हैं। मुझे विपत्तियों में सहायता देते हैं। मैं अब अपनी युद्ध-नीति में परिवर्तन करूँगा। अब युद्ध नहीं होंगे।"

सम्राट् की इस घोषणा का सबने स्वागत किया। सभी जय-जयकार कर उठे। फिर सम्राट् ने वल्लभी नरेश को दरबार में उपस्थित करने का आदेश दिया।

: १३ :

सच्ची विजय

कन्नौज में सम्राट् हर्षवर्द्धन का राजदरबार लगा हुआ था। मंत्रिगण अपनी-अपनी जगहों पर बैठे हुए थे। लोगों की ठसाठस भीड़ थी। सब के सब बन्दी नरेश को देखने के लिये अधीर थे। तभी सम्राट् आकर अपने सिंहासन पर विराजमान हुए। लोगों ने उनका जय-जयकार किया।

हर्षवर्द्धन ने उन सबका अभिवादन स्वीकार किया। इसके बाद उन्होंने सेनापति सिंहनाद को आज्ञा दी—"बन्दी ध्रुवसेन को दरबार में हाज़िर करो।"

कुछ ही समय में वल्लभी के राजा ध्रुवसेन बन्दी बनाकर राजदरबार में लाये गये। उन्हे देख सभी सभासद जीत की खुशी में झूम उठे। दरबार में चारों ओर से बंदी को प्राण-दण्ड देने की आवाजें उठने लगीं।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने सभासदों की यह आवाज सुनी तो चौंक पड़े। उन्हें इस निर्णय पर बहुत अचम्भा हुआ। गंभीर स्वर में उन्होंने सबसे पूछा—"पहले यह तो पता लगे कि बन्दी को प्राणदण्ड किस अपराध पर दिया जाये?"

सभी सभासद चुप रहे। किसी से कुछ जवाब न बन पड़ा। काफी देर के बाद एक सभासद ने साहस के साथ कहा, "वल्लभी के राजा युद्ध में हम से हार चुके हैं। कन्नौज के राज-नियम के अनुसार वे प्राणदण्ड के भागी है।"

"लेकिन दण्ड कैसा और क्यों? क्या युद्ध में हार जाना



अपराध है ?" हर्ष ने कठोर होकर पूछा ।

"वल्लभी नरेश के साथ युद्ध में कन्नौज के सैकड़ों सैनिक हताहत हुए । क्या इसका बदला हम नरेश से न लेंगे ? उन्हें अवश्य प्राण-दण्ड मिलना चाहिये ।"

दूसरी आवाज़ उठी, "हाँ वल्लभी नरेश को सूली पर चढ़ा दिया जाये ।"

सम्राट् ने सभासदों के वचनों को बड़े ध्यान से सुना । सभी सभासदों ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की । कुछ देर के बाद सम्राट् बोले, "वल्लभी पर कन्नौज की विजय हुई, माना । पर वल्लभी निवासी उसे हृदय से स्वीकार नहीं करते । वे विद्रोही बने हुए हैं । उनके इस विद्रोह को भी दूर करने का आप उपाय बतावें ।"

इस समाचार को सुन सभी सभासद एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे । उनमें से किसी से भी उत्तर देते न बना । इनमें शत्रुघ्न नाम का एक सभासद था । वह सम्राट् का मुँह-लगा मंत्री भी था । उसने साहस करके कहा, "सम्राट् आप सभी वल्लभी के निवासियों को राजद्रोह के कारण प्राण-दण्ड दें । उनके घरों में आग लगा दें । उनके बच्चों को मौत के घाट उतार दें । विद्रोहियों को कुचलने का यही एक रास्ता है । विद्रोह इसी नीति से शान्त हो सकता है ।"

सभासद शत्रुघ्न के एक-एक शब्द को सभी ने बड़े ध्यान से सुना । सभी सभासदों में शत्रुघ्न के प्रति सम्मान की भावना बढ़ चली । राजसभा में कुछ देर तक फिर शान्ति छा गई । थोड़ी देर बाद इस चुप्पी को तोड़ते हुए राज्यश्री ने कहा, "प्रजा का पालन करना राजा का धर्म है । प्रजा को उजाड़ कर वह शासन किस पर करेगा ? क्या उजड़े प्रदेश पर ? क्या

श्मशान भूमि पर ? क्या युद्ध भूमि में पड़ी लोथों पर ? पर यह ध्यान रखो कि जहाँ शक्ति से काम नहीं चलता, वहाँ अहिंसा और प्रेम की विजय सम्भव है। शक्ति की विजय का असर कुछ ही समय तक होता है, पर अहिंसा और प्रेम की विजय युगों-युगों तक अमर रहती है। मेरे विचार से वल्लभी के राजा ध्रुवसेन को छोड़ दिया जाये और वल्लभी की विद्रोही जनता पर प्रेम की सच्ची विजय पाने की कोशिश की जाये।"

दिवाकर मित्र ने राज्यश्री के विचारों का स्वागत करते हुए कहा, "मैं राज्यश्री के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।"

राजसभा में उपस्थित सभी सभासदों ने राज्यश्री की बात को स्वीकार किया। तब सम्राट् हर्षवर्द्धन ने घोषणा की, "मैं वल्लभी के राजा को छोड़ता हूँ और घोषणा करता हूँ कि उनके व मेरे राज्य के सम्बन्ध आज से स्थायी हो जायेंगे। इन सम्बन्धों का आधार प्रेम व अहिंसा होगा।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन की नीति में एकदम परिवर्तन देख सभी सभासद दंग रह गये। सम्राट् ध्रुवसेन के बेड़ी-बन्धन खोल दिये गये।

ध्रुवसेन गद्गद् हो उठा। सम्राट् की इस उदारता और शान्ति नीति को देख कर उसने सिर झुका कर हर्ष को अभिवादन करते हुए कहा, "जीवन में पहली बार मैंने यह अनुभव किया है कि प्रेम की विजय ही सच्ची विजय है। उसका कोई भी शक्ति मुकाबला नहीं कर सकती। प्रेम की धार तलवार की धार से अधिक पैनी और प्रभावकारी होती है। तलवार का वार शरीर पर होता है और उसके जख्म से खून निकलता है। लेकिन प्रेम का वार सीधे मन पर होता है और उसका जख्म दिखाई नहीं देता। जख्म होता ही नहीं है,

पर उसका दर्द जख्म से भी ज्यादा असर और अनुभव कराने वाला होता है। प्रेम के वशीभूत होकर मैं सम्राट् की आधीनता स्वीकार करता हूँ।"

सारी सभा ने तालियाँ बजाकर ध्रुवसेन के प्रति अपनी खुशी व्यक्त की। तभी सम्राट् ने उठ कर कहा, "यह तो वल्लभी नरेश की महानता है, जो उन्होंने मेरी आधीनता स्वीकार कर मेरे गौरव को बढ़ाया है। लेकिन मेरे लिये यह उचित नहीं जान पड़ता। मैं ध्रुवसेन को स्वतन्त्र करता हूँ, इस विश्वास के साथ कि वह हमारे साथ हमेशा के लिए मित्रता बनाए रखेंगे।"

सभासदों ने उठ कर जोर से नारे लगाये—"सम्राट् हर्ष-वर्द्धन की जय हो! रानी राज्यश्री की जय हो!! वल्लभी नरेश महाराज ध्रुवसेन की जय हो!!!"

सभासद नारे लगा कर अपनी जगह पर बैठ गये। थोड़ी देर बहन राज्यश्री के साथ सम्राट् हर्ष ने धीमे स्वर में वार्तालाप किया, फिर हँसी की चाँदनी बिखेरते हुए उठ खड़े हुए और महामंत्री से बोले, "राजकुमारी चारुमित्रा को यहाँ ले आओ।"

"जो आज्ञा!" कह कर महामंत्री चला गया।

इधर राजसभा में खलबली मच गई। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। सब की जबान पर एक ही बात थी, "राजकुमारी चारुमित्रा को एकाएक सम्राट् ने राजसभा में क्यों बुलवाया है? न जाने अब महाराज कौन-सा नया गुल खिलाने वाले हैं?"

एक ने कहा, "राजकुमारी ने कोई अपराध किया होगा,

उसी की सज़ा शायद उसे दरबार में सुनाने वाले हैं। राजकुमारी आती ही होगी।"

दूसरा बोला, "नहीं, यह बात नहीं। सुना है चारुमित्रा बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना चाहती है। उसी की घोषणा सम्राट् दरबार में करने वाले हैं।"

इस प्रकार सभा में तरह-तरह की बातें हो ही रही थीं और लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार राजकुमारी के बारे में अटकलें लगा रहे थे, तभी महामंत्री के साथ चारुमित्रा ने दरबार में प्रवेश किया।

उसे देखते ही दरबार में एकदम खामोशी छा गई। लोग सम्राट् के मुख से राजकुमारी के विषय में कुछ सुनने को बेताब हो उठे। उनका कौतूहल बढ़ गया था। सब गर्दनें ऊँची उठा कर देखने लगे।

राजकुमारी अपने पिता के पास आकर खड़ी हो गई। उसके पीछे राज्यश्री खड़ी थी। सम्राट् उसे अपने साथ लेकर जहाँ ध्रुवसेन खड़े थे, वहाँ पहुँचे। सब को सम्बोधित कर वह बोले, "सभासदो! आज वल्लभी नरेश ने हमें सदा मित्रता निभाने का आश्वासन दिया है। मैं भी अपनी ओर से इस मित्रता को अधिक दृढ़ करने के लिए राजकुमारी चारुमित्रा का हाथ ध्रुवसेन के हाथ में देता हूँ। अब दोनों राज्य अधिक गहरे मित्र बन गये हैं और यह नाता हमेशा निभायेंगे, ऐसा मैं अपनी ओर से आश्वासन देता हूँ।" इतना कह कर सम्राट् ने अपनी पुत्री का हाथ ध्रुवसेन के हाथों में दे दिया। राजद्वार पर शहनाई बजने लगी। दिवाकर मित्र ने आगे बढ़ कर वर-वधू को आशीर्वाद दिया। इसके बाद दोनों सम्राट् गले मिले।

ह्वेनसांग आश्चर्य से यह सब देख रहा था। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने हर्षित होकर गद्गद् कण्ठ से कहा, "भारतवर्ष एक रहस्यमय देश है। दो सम्राट् जो पहले शत्रु थे, अब मित्र हो गये हैं। दोनों ने ऐसा करके एकता, सुरक्षा और शान्ति कायम रखने का प्रयत्न किया है। आज इतिहास का पुराना पन्ना फिर दोहराया गया है। सम्राट् अशोक ने शान्ति का सन्देश फैलाने के लिए अपने प्रिय पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा था। उसके बाद आज फिर सम्राट् हर्षवर्द्धन अपनी पुत्री को वल्लभी के राजा ध्रुवसेन को प्रदान कर सौराष्ट्र भेज रहे हैं।"

इसके बाद सभा बर्खास्त हुई। लोग खुशी में झूमते हुए अपने-अपने घरों की ओर चल दिये।



: १४ :

लड़ाई की ओर

सुवह का समय था। सारी धरती जाग गई थी। पहाड़ियों के पीछे सूरज झाँकने लगा था। सव कुछ उजला-उजला और सुहावना लग रहा था। वाग-वगीचों में हरी-हरी घास पर रात ने जाते समय कितने ही मोती लुटा दिये थे। सम्राट् हर्षवर्द्धन अपने राजदरवार में वैठे थे। दरवार में सूर्य की सुनहरी किरणें विखर रही थीं, जो वहाँ जड़े अमूल्य रत्नों और पत्थरों में अपूर्व जगमगाहट पैदा कर रही थीं।

राजदरवार लगा था। सभासदों की भीड़ थी, लेकिन वहाँ विल्कुल शान्ति थी। महाकवि वाणभट्ट का कविता पाठ हो रहा था। वे 'हर्ष चरित' के कुछ अंश सम्राट् को सुना रहे थे। सम्राट् के मुख पर मुस्कान विखर रही थी, और सभासद कविता सुन-सुनकर आत्मविभोर हो रहे थे। भिक्षुवर ह्वेनसांग भी महाकवि की ओर वड़े कौतुक से देख रहे थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था महाकवि की प्रतिभा पर। काव्य रस में सभासद डूव गये थे। ऐसा लगता था कि दरवार में कोई न वैठा हो।

सम्राट् हर्षवर्द्धन के एक विशेप गुप्तचर ने इसी समय राजदरवार में प्रवेश किया। सभी सभासदों की आँखें उसकी ओर उठ गयीं। गुप्तचर ने सम्राट् को सिर झुकाकर निवेदन किया, "सम्राट्! महाराष्ट्र-नरेश चालुक्यराज पुलकेशिन द्वितीय

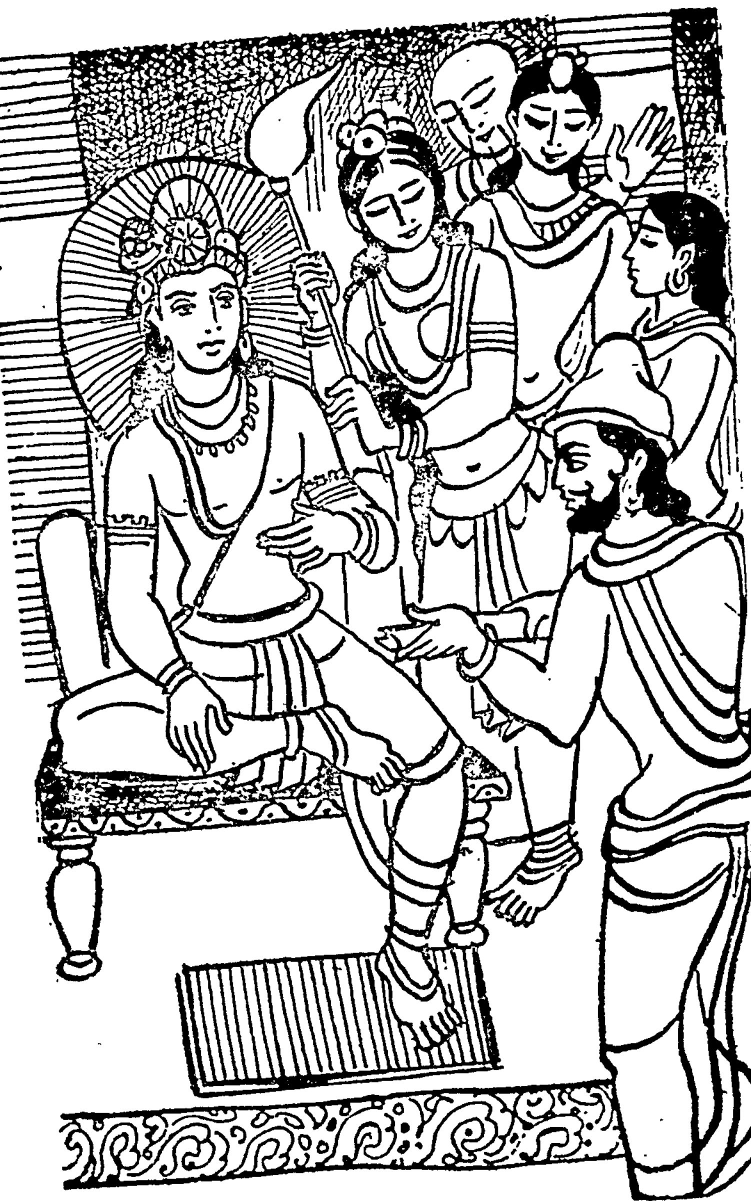
का एक दूत बाहर आया हुआ है। वह आपसे भेंट करना चाहता है।"

सम्राट् के माथे पर बल पड़ गये। बाणभट्ट को कविता-पाठ अधूरा छोड़कर नीचे बैठ जाना पड़ा। हर्ष बोले, "उसे सादर ले आओ।"

कुछ ही क्षणों में दूत ने सम्राट् के सामने उपस्थित होकर अभिवादन किया और कहा, "महाराष्ट्र के सम्राट् पुलकेशिन द्वितीय अपनी सेना के साथ नर्मदा नदी के किनारे पर पड़ाव डाले हुए हैं। उन्होंने आपको युद्ध के लिए निमंत्रण भेजा है।" इतना कहकर दूत ने एक पत्र सम्राट् की ओर बढ़ा दिया।

सम्राट् ने पत्र की मुहर तोड़ी और एक लम्बी साँस में उसे पढ़ गये। पढ़ते ही वे कठोर हो गये। पत्र राज्यश्री को देते हुए वे बोले, "तो सम्राट् पुलकेशिन युद्ध के लिए तैयार हैं। मेरी नीति का अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। मैंने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की है, पर वे युद्ध के लिए तैयार हैं। लेकिन मैं इसके विरुद्ध हूँ। बेकार का खून बहाना नहीं चाहता। इसका मतलब साम्राज्य खतरे में है। देश की रक्षा और मर्यादा का सवाल आ खड़ा हुआ है। बड़ी कठिन समस्या है।"

सभी सभासद युद्ध की बात सुनकर गम्भीर हो गये। हाँ, सेनापतियों के मुख पर अवश्य कुछ खुशी दिखलायी पड़ती थी। सारी सभा शान्त थी। राज्यश्री पत्र पढ़ कर बोली, "यह संसार शान्ति के रास्ते में रोड़े अटकाता रहता है। सुख, चैन और अमन को यह संसार हिंसा द्वारा पाना चाहता है, जो केवल एक धोखा है। सच्चा सुख-चैन और अमन, प्रेम तथा अहिंसा को अपनाने से मिलता है। भैया हर्षवर्द्धन, तुम चिन्ता न करो। धीरज रखकर अपनी नीति पर डटे रहो। तुम्हारी विजय होगी।"



राजश्री के मौन होते ही सेनापति सिंहनाद ने तेज आवाज में कहा, "सम्राट् ! मैं आपके पिता के समय से सेनापति हूँ। मैंने अनेक युद्धों को देखा है। अनेक साम्राज्यों के बल को अपनी भुजाओं से तौला है। पर सब का सार मैंने यही पाया है कि शत्रु का पूरी तरह से नाश कर देना ही उचित है। ऐसा करने से ही साम्राज्य की सुरक्षा और शान्ति कायम रह सकती है।"

सेनापति सिंहनाद की बात राजदरबार में उपस्थित सभासदों के हृदय में घर कर गयी। उनकी बात का समर्थन करते हुए सेनापति भण्डि ने कहा, "सम्राट् ! चालुक्यराज पुलकेशिन द्वितीय आपसे चौथी बार युद्ध करने के लिए आया है। वह आपकी शक्ति को कम समझता है। इसलिए वह बार-बार आपके पराक्रम को चुनौती देता रहता है। अगर आप उसकी चुनौती को स्वीकार नहीं करेंगे, तो यह प्रश्न सारे साम्राज्य को डावाँडोल कर सकता है। एक न एक दिन वह असावधान देखकर हमारे साम्राज्य पर अवश्य आक्रमण करेगा।"

सम्राट् सोच में पड़ गए। कुछ देर वातावरण में खामोशी रही, फिर सम्राट् ने दरबार बर्खास्त करने की घोषणा की और तुरन्त आपातकालीन सभा बुलवाई। आम लोगों के चले जाने के बाद सम्राट् ने सेनापति सिंहनाद से पूछा, "क्या हम पुलकेशिन द्वितीय को हरा सकते हैं?"

"केवल हरा ही नहीं, अपितु उसे हमेशा के लिए मिटा सकते हैं। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं, सम्राट् ! लेकिन वैसे महाराष्ट्र-सम्राट् के पास बहुत मामूली ताकत है। वह हमारी सेना का इस बार मुकाबला नहीं कर सकता। उसे भारी मुँह की खानी पड़ेगी।" सेनापति ने कहा।

"वह कैसे ?" सम्राट् ने पूछा।

"सम्राट् ! संगठन अपने आप में बहुत बड़ी ताकत होती है। हमारा पुलकेशिन के साथ अब तक तीन बार युद्ध हुआ है। इन तीनों बार हमारी सेनाएँ राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में दुश्मन से लोहा ले रही थीं। इसलिए ताकत बँटी हुई थी, जिससे हम ठीक तरह दुश्मन की खबर न ले सके। उल्टे हमें ही पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा और हम असफल हुए। पर अब वह बात नहीं है। इस बार हमारी पूरी ताकत एक ही जगह रहेगी।" सेनापति ने आवेश में आकर कहा।

उसी समय बात का छोर पकड़ते हुए दूसरे सेनापति भण्डि ने कहा, "हम हार नहीं सकते, महाराज ! इस बार हम अपनी तीनों हारों का बदला चालुक्यराज से दिल खोलकर लेंगे। उसे नाकों चने चबाने के लिए विवश कर देंगे। नर्मदा सदियों तक इस युद्ध को याद रखेगी।

सम्राट् हर्षवर्द्धन दोनों सेनापतियों की बात ध्यान से सुन चुके थे। वे अपने पास बैठे ह्वेनसांग, दिवाकर मित्र और राज्यश्री की ओर बार-बार देख रहे थे। दिवाकर मित्र अभी तक चुप थे। वे अब अपनी चुप्पी को तोड़ते हुए बोले, "सम्राट्, मैंने सभी की बातें सुनीं। यह बिल्कुल सच है कि विजय आपके चरण चूमेगी, लेकिन मेरा यही मत है कि अहिंसा और प्रेम की जीत जरूर होगी। शत्रु सीमा पर पड़ाव डाल चुका है। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आप भी अपनी सेना को सीमा पर भेज दें, पर युद्ध न करें।"

दिवाकर मित्र की बात से सभी एकमत दिखलाई पड़े। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने इसी समय शंका करते हुए कहा, "गुरुवर, दो शत्रु सेनाओं में युद्ध न हो, यह असम्भव है। एक दूसरे को

देखकर जब उसमें जोश भर जायेगा, तब उसे रोकना कठिन होगा। फिर महाराष्ट्र के सम्राट् की सेना तो युद्ध के निश्चय से ही आयी होगी।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन की शंका से भरी बात पर दिवाकर मित्र हँसते हुए बोले, "सम्राट् शंका न करें। युद्ध की बात मन में न सोचें। भगवान् बुद्ध सब ठीक ही करेंगे।"

दूसरे दिन सुबह सम्राट् ने सेना और सेनापतियों के साथ नर्मदा नदी की ओर कूच किया। इधर राज्यश्री और दिवाकर मित्र ने उनके चले जाने के बाद महाकवि बाणभट्ट को सम्राट् पुलकेशिन के पास एक पत्र देकर भेजा। फिर कुछ समय के बाद दोनों ह्वेनसांग के साथ युद्ध-भूमि की ओर चल पड़े।



: १५ :

लड़ाई नहीं

दोपहर का समय था। आकाश में वादलों के टुकड़े रुई के ढेर की तरह विखरे हुए थे। उनके पीछे सूरज की किरणें सैकड़ों लकीरों में वँटी हुई वहुत भली लगती थीं। नीचे धरती पर नर्मदा कल-कल करती वह रही थी। वड़ी चुलवुली और गहरी नर्मदा ! उत्तर-दक्षिण को बाँटने वाली नर्मदा ! गंगा-यमुना-सी पवित्र नर्मदा ! इसके दोनों किनारों पर दो साम्राज्यों की सीमायें मिलती थीं। उत्तर दिशा में सम्राट् हर्षवर्द्धन शिलादित्य का राज्य था और दक्षिण दिशा में महाराष्ट्र के सम्राट् चालुक्यराज पुलकेशिन द्वितीय का। आज इस सीमा पर दोनों का भाग्य-निर्णय होने वाला था।

नर्मदा नदी के एक किनारे पर उत्तर की ओर सम्राट् हर्षवर्द्धन अपनी साठ हज़ार सेना के साथ पड़ाव डाले हुए थे। उनकी सेना के हाथी चिंघाड़ रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और चल पड़ने को मचल उठते थे। सैनिकों की आवाजें पास के वन-प्रदेश की शान्ति को भंग कर रही थीं। नदी के दूसरी ओर महाराष्ट्र के सम्राट् पुलकेशिन अपने वीर सैनिकों के साथ डटे हुए थे। ऐसा लगता था जैसे गाँव का गाँव उठकर किनारे पर चला आया हो। मेले की तरह रौनक थी। कोई सैनिक वीर रस का गीत गा रहा था तो कोई तलवार की धार और तेज करने में मग्न था।

तभी एकाएक दक्षिण दिशा में विगुल वज उठा। चारों

: १५ :

लड़ाई नहीं

दोपहर का समय था। आकाश में वादलों के टुकड़े रुई के ढेर की तरह विखरे हुए थे। उनके पीछे सूरज की किरणें सैकड़ों लकीरों में वँटी हुई वहुत भली लगती थीं। नीचे धरती पर नर्मदा कल-कल करती वह रही थी। वड़ी चुलवुली और गहरी नर्मदा! उत्तर-दक्षिण को वाँटने वाली नर्मदा! गंगा-यमुना-सी पवित्र नर्मदा! इसके दोनों किनारों पर दो साम्राज्यों की सीमायें मिलती थीं। उत्तर दिशा में सम्राट् हर्पवर्द्धन शिलादित्य का राज्य था और दक्षिण दिशा में महाराष्ट्र के सम्राट् चालुक्यराज पुलकेशिन द्वितीय का। आज इस सीमा पर दोनों का भाग्य-निर्णय होने वाला था।

नर्मदा नदी के एक किनारे पर उत्तर की ओर सम्राट् हर्पवर्द्धन अपनी साठ हज़ार सेना के साथ पड़ाव डाले हुए थे। उनकी सेना के हाथी चिघाड़ रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और चल पड़ने को मचल उठते थे। सैनिकों की आवाजें पास के वन-प्रदेश की शान्ति को भंग कर रही थीं। नदी के दूसरी ओर महाराष्ट्र के सम्राट् पुलकेशिन अपने वीर सैनिकों के साथ डटे हुए थे। ऐसा लगता था जैसे गाँव का गाँव उठकर किनारे पर चला आया हो। मेले की तरह रौनक थी। कोई सैनिक वीर रस का गीत गा रहा था तो कोई तलवार की धार और तेज करने में मग्न था।

तभी एकाएक दक्षिण दिशा में विगुल वज उठा। चारों

दिशायें काँपने लगीं। धरती से उड़ी धूल [illegible] उठी। यह देख हर्षवर्द्धन की सेना में भी [illegible] वह युद्ध के लिए तैयार होने लगी। युद्ध के [illegible] बजे। सब योद्धा मोर्चों पर आ डटे। [illegible] इधर-उधर हटना शुरू हो गया। [illegible] सँभाल लिये।

भण्डि ने देखा समाट् हर्षवर्द्धन अपने इन्द्रनील हाथी पर चुपचाप वैठे हैं और वार-वार चारों ओर दृष्टि डालकर खिन्न हो रहे हैं।

सहसा वाणों की वर्षा और अधिक तेज हुई। सम्राट् हर्ष-वर्द्धन की सेना का रहा-सहा साहस भी ठण्डा पड़ गया। वह भागने लगी। सिपाही घायल होकर गिरने लगे। सेनापतियों ने उन्हें रोका। महावली हर्षवर्द्धन से यह न देखा गया। उन्होंने तुरन्त ही एक नाव मँगाई और उसमें वैठ नाव पर सफेद झण्डी वाँधने की आज्ञा दी गई। नाव सम्राट् की आज्ञा पाकर लहरों पर इतराती हुई आगे वढ़ चली।

सम्राट् को नाव में वैठे जाते देख कर उनकी सेना की भगदड़ रुक गई। सेनापति भण्डि व सिंहनाद सम्राट् के इस कार्य को देखकर अवाक् रह गये। वे दोनों अपने-अपने मन मसोस कर रह गये।

दूसरी ओर पुलकेशिन की सेना में अपार जोश था। वे लड़ने-मरने के लिए उतावले हो रहे थे। सिर पर कफन वाँधे तैयार खड़े थे। लेकिन जव उन्होंने सफेद झण्डी वाली नाव को अपनी ओर आते देखा, तव वे सवके सव चकित रह गये। वे आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

उनके सेनापति ने अपने साथी से कहा, "यह सरासर धोखा है। महाराज हर्ष हम पर धोखे से आक्रमण करना चाहते हैं, हमारी आँखों में धूल झोंक रहे हैं। हमें उनसे सतर्क रहना होगा।"

साथी सेनापति ने कड़क कर कहा, "तुम्हारी अक्ल तो खराव नहीं हो गई है? देखते नहीं हो, नाव पर सफेद झण्डी



बँधी है ? इसका मतलब होता है शत्रु संधि करना चाहता है। और सम्राट् हर्ष भी नाव में अकेले ही आ रहे हैं। एक आदमी इतनी विशाल सेना के सामने कैसे टिक सकता है ? निश्चय ही वे धोखा नहीं दे रहे।"

इतना कह उसने तुरन्त सेना को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया। सम्राट् पुलकेशिन की सेना ने सेनापति की आज्ञा पा अपने हथियार डाल दिये। सभी सैनिक आ रही नाव की ओर टकटकी लगाकर देखते रहे।

धीरे-धीरे नाव किनारे पर आ लगी। उसमें से सम्राट् हर्षवर्द्धन नीचे उतरे। इसी किनारे के पास ही सम्राट् पुलकेशिन का डेरा था। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने डेरे के पास खड़े एक सैनिक को बुलाकर एक पत्र दिया।

वह सैनिक पत्र लेकर अन्दर गया। उसने पत्र पुलकेशिन के हाथों में थमा दिया। पत्र पढ़कर तुरन्त ही सम्राट् पुलकेशिन बाहर आये। बाहर खड़े सम्राट् हर्षवर्द्धन ने उन्हें देखा।

महाप्रतापी हर्षवर्द्धन को देख पुलकेशिन चौंक पड़े। चकित हो वह बोल उठे, "सम्राट् आप ? इस समय ? अब तो युद्ध चल रहा है ! आपकी सुरक्षा खतरे में है। अगर लड़ाई में आपको कुछ हो गया तो ? आप तुरन्त लौट जाइये। मेरे सैनिक आपको नर्मदा पार सुरक्षित पहुँचा देंगे।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन मुस्करा उठे। बोले, "मैं युद्ध नहीं करना चाहता। व्यर्थ ही जान-माल की हानि होते मैं नहीं देख सकता। मैं आपसे मित्रता करने आया हूँ।"

युद्धबन्दी और मित्रता करने की बातें पुलकेशिन ने सुनीं और कहा, "आप की बहन राज्यश्री की ओर से भेजे दूत

सम्राट् हर्ष और अधिक विनम्र होकर बोले, "ऐसा न कहो पुलकेशिन! भगवान ने मेरी आँखें खोल दी हैं। शान्ति, प्रेम और सह-अस्तित्व का मार्ग मुझे मिल गया है। अब इन्हीं पर मैं चलूँगा। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि लड़ाई से राज्य जीते जा सकते हैं, पर मन नहीं; और सच्ची जीत लोगों के दिलों को जीतने में होती है। इसलिये अब मैं शस्त्र न उठाऊँगा।"

पुलकेशिन हँस पड़ा। फिर पहले से भी दृढ़ स्वर में बोला, "आप युद्ध छेड़ना चाहें या न चाहें, लेकिन मैं युद्ध अवश्य छेड़ूँगा। मैंने हूणों को हराने वाले सम्राट् हर्षवर्द्धन से युद्ध करने की प्रतिज्ञा कर ली है। मैं देखना चाहता हूँ, तुम में कितनी शक्ति है? वैसे मैं महाकवि बाणभट्ट के प्रस्ताव को अस्वीकार भी नहीं कर सका हूँ।"

सम्राट् हर्षवर्द्धन बाणभट्ट का नाम सुन चकित से रह गये। वे राज्यश्री के प्रयत्न की मन ही मन प्रशंसा कर उठे और फिर साहस कर बोले, "चालुक्यराज सम्राट् पुलकेशिन ! आप वीर हैं। मैंने पहले आप से युद्ध करने की ठानी थी। अपनी संसार भर को जीतने की प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहा था। पर अब संसार को शस्त्र से नहीं, प्रेम और अहिंसा से जीतना ही ठीक समझा है। आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार करें; मेरे मित्र बनें !"

चालुक्यराज सोच में पड़ गया। उसके मस्तिष्क में अनेक विचार आने-जाने लगे। अधिक समय तक वह इस हालत में न रह सके। बोले, "मैं अभी इसका निर्णय न कर सकूँगा। इसके लिए मुझे नये सिरे से विचार करना होगा। मैं तो आप से घनघोर युद्ध करने के विचार से यहाँ आया था। मेरे राज्य की सीमाएँ भी अपने हाथ फैलाना चाहती हैं। समूचा दक्षिण इस समय मेरी मुट्ठी में है।"

"मैं जानता हूँ, पुलकेशिन ! आपकी वीरता और प्रताप को मैं जानता हूँ और इसलिए इच्छा है कि भारत की दो प्रबल शक्तियाँ आपस में मित्र बन जाएँ।" हर्ष ने कहा।

इसका उत्तर देते हुए सम्राट् पुलकेशिन ने दुःख भरे स्वर में कहा, "उत्तर भारत के वीर सम्राट् हर्षवर्द्धन ! तो मेरी इच्छा पूरी न हो सकेगी ? मुझे इसका दुःख होगा। मेरा सारा उत्साह समाप्त हो जायेगा।"

"सम्राट् ! यह समय आपस में लड़ने का नहीं है। आपसी फूट भारत में घर कर चुकी है। उसके बीज बहुत अन्दर तक पहुँच चुके हैं। एक राज्य दूसरे राज्य को नष्ट करने के प्रयत्न में लीन है। देश को इस दशा से उबारो !"

महाकवि बाणभट्ट तो पहले ही इस प्रस्ताव को लेकर आ चुके हैं, किन्तु मेरी इच्छा है कि युद्ध हो।"

"पर क्यों?" सम्राट् हर्षवर्द्धन ने दुःखित होकर कहा, "हज़ारों सैनिक व्यर्थ में अपने प्राण गँवा देंगे, माँ-नर्मदा का पानी उनके रक्त से लाल हो जायेगा। क्या उससे आपके मन को शान्ति मिलेगी?"

पुलकेशिन क्रूर हो उठा। ठहाका मार कर बोला, "आज शेर गाय कैसे बन गया? जिस सम्राट् ने लगातार छः वर्ष तक अपनी तलवार को म्यान में एक पल भी विश्राम न करने दिया, जिसने इस अवधि में अपने तन से लड़ाई की पोशाक न उतारी और लाखों नर-नारियों के खून से अपने हाथ रंगे, वही आज ऐसी बातें करे! इसमें अवश्य कोई न कोई गड़बड़ है। मुझे तो यकीन नहीं हो रहा आपकी इस शान्ति नीति पर।"

सम्राट् हर्ष और अधिक विनम्र होकर बोले, "ऐसा न कहो पुलकेशिन! भगवान ने मेरी आँखें खोल दी हैं। शान्ति, प्रेम और सह-अस्तित्व का मार्ग मुझे मिल गया है। अब उसी पर मैं चलूँगा। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि लड़ाई से राज्य जीते जा सकते हैं, पर मन नहीं, और सच्ची जीत लोगों के दिलों को जीतने में होती है। इसलिये अब मैं शस्त्र न उठाऊँगा।"

पुलकेशिन हँस पड़ा। फिर पहले से भी दृढ़ स्वर में बोला, "आप युद्ध छेड़ना चाहें या न चाहें, लेकिन मैं युद्ध अवश्य छेड़ूँगा। मैंने हूणों को हराने वाले सम्राट् हर्षवर्द्धन से युद्ध करने की प्रतिज्ञा कर ली है। मैं देखना चाहता हूँ, मुझ में कितनी शक्ति है? वैसे मैं महाकवि बाणभट्ट के प्रस्ताव को अस्वीकार भी नहीं कर सका हूँ।"

सेनापति ने तत्काल उपस्थित होकर कहा—"आज्ञा, सम्राट् !"

पुलकेशिन ने कहा, "हमने सम्राट् हर्षवर्द्धन से संधि कर ली है। अब युद्ध नहीं होगा। सेना को वापिस लौटने का आदेश दो।" "जो आज्ञा", कह कर सेनापति जयकेतु चला गया।

ठीक उसी समय नर्मदा नदी के किनारे पर एक दूसरी नाव आकर लगी। इस नाव से ह्वेनसांग, राज्यश्री और दिवाकर मित्र उतरते दिखलाई पड़े। ये तीनों ही सम्राट् पुलकेशिन के डेरे की ओर बढ़े चले आ रहे थे। डेरे के पास पहुँचते ही बाहर वार्तालाप में मग्न खड़े सम्राट् हर्षवर्द्धन ने उन्हें पहचान लिया। उन्होंने भी सम्राट् हर्षवर्द्धन व पुलकेशिन को पहचान लिया।

दोनों सम्राटों को इकट्ठा देख वे ठिठक कर उनके पास आकर खड़े हो गये। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने उन तीनों का परिचय सम्राट् पुलकेशिन से कराया। उनसे मिलकर सम्राट् पुलकेशिन को बड़ी खुशी हुई। परिचय के बाद राज्यश्री सम्राट् पुलकेशिन से बोलीं, "सम्राट् हर्ष आपके पास ही आ रहे थे। भैया हर्षवर्द्धन और आपके बीच चल रहे युद्ध को हम खत्म करना चाहते हैं। पर आप दोनों संयोग से यहाँ मौजूद हैं, जिसकी हमें खुशी है।"

ह्वेनसांग ने भी विनम्र भाव से कहा, "हाँ, चालुक्यराज ! मैं भी यही चाहता हूँ। दो दिलों के बीच फैली खाई किसी तरह पट जाये तो सबसे अच्छी बात होगी।"

"मेरी भी यही इच्छा है।" दिवाकर मित्र ने कहा

"लेकिन यह सब हो, तभी न ! और वह हो कैसे ?" पुलकेशिन ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा।

इसका केवल एक ही उपाय है, प्रेम। प्रेम वह चमत्कारी जादू है, जो गहरी से गहरी और चौड़ी से चौड़ी खाई को भी पाट देता है।

"लेकिन तुम्हें मालूम है कि दिल का शीशा एक बार चटकने पर जुड़ना असम्भव हो जाता है। इतने वर्षों का मैल पल भर में कैसे धुल सकेगा?"

राज्यश्री कह उठी, "ससार में कुछ भी असम्भव नहीं, चालुक्यराज! जहाँ चाह वहाँ राह। यदि मन में लाओ तो सब सम्भव होगा।"

राज्यश्री के मुख से मीठे वचनों को सुन सम्राट् पुलकेशिन मुस्करा उठे। उन्होंने राज्यश्री की प्रशसा करते हुए कहा, "देवि! आप भी खूब हैं। मेरे युद्ध का ही खात्मा करना चाहती हैं। मैं तो आज पराक्रमी सम्राट् से अपने बाहुबल को तुलवाना चाहता था। आप उसमें बाधा डाल रही है। चलो आपका ही कहा मानेगे। अब बतलाइये, आप चाहती क्या है?"

इसके उत्तर में राज्यश्री ने कहा, "सम्राट्, मेरे भेजे महाकवि बाणभट्ट आपकी सेवा मे आ ही चुके है। मै शान्ति चाहती हूँ। बेकार का खून बहते मैं नही देखना चाहती। आप दोनों सम्राट् मित्र बनें और प्रतिज्ञा करे कि भविष्य मे आपस में कभी भी युद्ध न करेंगे।" और इतना कह वे गम्भीर हो गई।

सम्राट् पुलकेशिन ने राज्यश्री के मौन होने पर कहा, "आओ, शिविर में चलें। वही बाते करेंगे। वैसे आपका भेजा सदेशा मुझे मिला। महाकवि बाणभट्ट से देर तक बातचीत भी मैं कर चुका हूँ।" कह कर वे सब शिविर की ओर चल पड़े।

शिविर मे पहुँच कर पुलकेशिन ने अगूर का रस [illegible] और सबको खाने के लिये फल प्रस्तुत किए।

संतरे की फाँक मुँह में डालते हुए राज्यश्री ने पूछा, "तो फिर वाणभट्ट से हुए वार्तालाप का क्या निष्कर्ष निकला ?"

"वही, जो आप चाहती हैं। आपकी आज्ञा मानकर मैं आज से युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।" अंगूर के रस का एक घूँट पीते हुए पुलकेशिन बोला, "सम्राट् हर्ष और गुरुवर दिवाकर मित्र दोनों के लिए मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा है, मैं किसी भी प्रकार उनकी वात को टाल नहीं सकता। देवि राज्यश्री को मैं अपनी वहन मानता हूं, उन्हें भी नाराज़ न होने दूंगा।"

तभी राज्यश्री को वाणभट्ट का स्मरण हो गया। उसने पूछा, "महाकवि वाणभट्ट कहाँ गए हैं ? दिखाई नहीं दिये।"

पुलकेशिन हँस कर वोला, "महाकवि वाणभट्ट हमारे महाकवि रविकीर्ति के साथ यहीं कहीं घूम रहे होंगे। दोनों विद्वान और मस्त-मौजी जीव हैं। उन्हें अभी बुलवाता हूँ।" उन्होंने अपने सेवक को दोनों को बुलवाने भेजा।

सेवक के जाते ही वाणभट्ट अपने मित्र रविकीर्ति के साथ पुलकेशिन के शिविर में उपस्थित हुए। दोनों के मुख पर अपार तेज था और वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। रविकीर्ति उन दिनों दक्षिणी भारत में संस्कृत के माने हुए प्रसिद्ध कवि थे। दोनों ने सबको अभिवादन किया।

कुछ देर शान्ति रही; फिर सब खड़े हुए। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने कहा, "आओ, सम्राट् चालुक्यराज पुलकेशिन ! हम दोनों गले मिलें। देखो, कितना सुन्दर समय आज आया है। आज दो सम्राट् देश की एकता और शान्ति रखने की एक साथ प्रतिज्ञा कर रहे हैं। युद्ध से विनाश होता है। इसलिए युद्ध रोकने की घोषणा कर रहे हैं।"

दोनों सम्राट् गले मिले। वे अपार प्रसन्नता अनुभव करने



लगे। इसी बीच महाकवि बाणभट्ट ने महाकवि रविकीर्ति से कहा, "वाह मित्र, कैसा संयोग है ! देखो तो उत्तर और दक्षिण के दो कवि आज अचानक आ मिले हैं। आओ हम भी प्रतिज्ञा करें कि अपनी लेखनी से देश की जागृति में सहायक कविताएँ लिखा करेंगे।"

दोनों महाकवि गले मिले। दोनों ने प्रतिज्ञा की। सारा वायुमण्डल हर्ष से भर उठा। ह्वेनसांग चकित हो यह सब देखता रहा।

दोनों ओर की सेनाओं को सन्धि की खबर दे दी गई। खबर मिलते ही दोनों ओर से जय-जयकार होने लगा। दोनों सम्राटों ने एक-दूसरे से विदा माँगी। इसी समय पास खड़े हुए दिवाकर मित्र दोनों राजाओं को आशीर्वाद देते हुए बोले, "आज युद्ध होते-होते रुक गया है। अनेकों मनुष्यों का खून बहने से बचा; यह प्रसन्नता की बात है। अनेक स्त्रियाँ, मातायें और बहनें इसके लिये आपको धन्यवाद देंगी। शान्ति और अहिंसा की आज विजय हुई। भारत का इससे महान् कल्याण हुआ है। नर्मदा के तट पर आज जो घटना घटी है, वह अमर रहेगी। सारा देश फले-फूले। आप दोनों सम्राट् लोभ और हिंसा के विचार मन में न लावें। भगवान बुद्ध आपको शक्ति दें। सब का कल्याण हो।"

आशीर्वाद पाकर दोनों सम्राट् सेना सहित अपने-अपने देश को लौट आये। दोनों की मित्रता खूब फली-फूली। सम्राट् हर्षवर्द्धन का राजदूत, चालुक्यराज सम्राट् पुलकेशिन की सहायता से फ़ारस देश पहुँचा। वहाँ के राजा ने भी मित्रता बढ़ाने के लिए अपना दूत हर्षवर्द्धन के दरबार में भेजा।

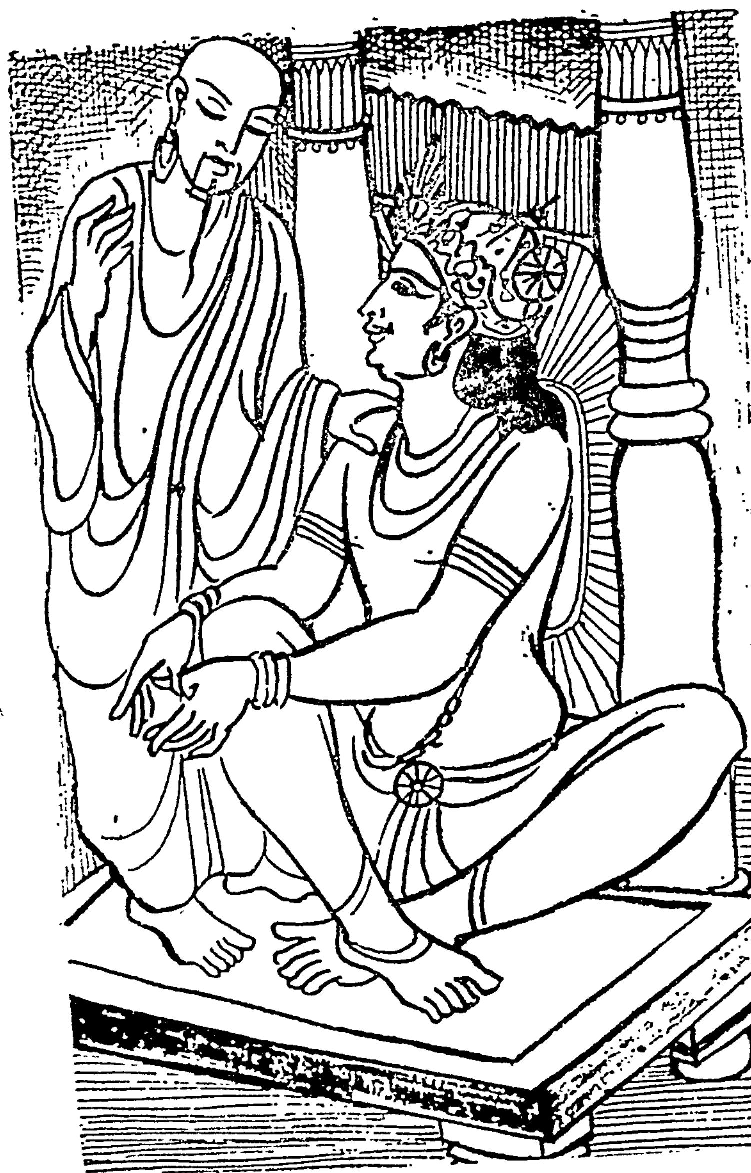
: १६ :

अश्रुपूर्ण विदाई

समस्त उत्तरी भारत सम्राट् हर्षवर्द्धन के अधिकार में आ चुका था। कितने ही छोटे-छोटे राज्य आपस में सदा लड़ते-झगड़ते रहते थे, और एक-दूसरे से जलते थे। सम्राट् हर्ष ने अपने प्रभाव से उन सबको एकता के सूत्र में बाँध दिया था और उनकी शक्ति सगठित हो गई थी, जिससे वे हर अपत्ति में एक होकर उसका मुकाबला कर सकते थे। स्वयं सम्राट् हर्ष-वर्द्धन भी अब युद्धप्रिय राजा न रह गए थे। उनकी इच्छा अब अधिक साम्राज्य बढ़ाने की न थी। वे अब शान्ति और अहिंसा के रास्ते को अपनाकर देश के निर्माण में जुटे हुए थे।

एक दिन की बात है। साँझ हो रही थी। पक्षी अपने-अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे। सूरज की किरणें धरती से विदा ले रही थीं। रोशनी में चौपायों की उड़ती हुई धूल गुलाल-सी लग रही थी। सम्राट् हर्षवर्द्धन महल के झरोखे में बैठे यह सुहावना दृश्य मग्न होकर देख रहे थे। लेकिन उनका मन किन्हीं दूसरे ही विचारों में उलझा हुआ था। इसलिए वे भिक्षुवर ह्वेनसाग का आना न जान सके। उन्होंने पीछे से सम्राट् के कंधे पर हाथ रखा तो वे चौंक उठे। ह्वेनसाग को सामने देख उन्होंने मुस्कराकर उनका स्वागत किया और बोले "आओ भिक्षुवर! आपको देखकर न जाने क्यों मन की सारी व्यथा एकदम दूर हो जाती है।"

ह्वेनसांग ने पास ही आसन खींच कर बैठते हुए कहा,



"अभी-अभी किस सोच में डूबे हुए थे, सम्राट् ! मैं भी सुनूँ ! शायद मन का कुछ बोझ हलका हो जाये।"

सम्राट् भारी मन से कह उठे, "देश की हालत देखकर कभी-कभी मन उचट जाता है। दिल करता है, संन्यास लेकर भिक्षु बन जाऊँ।"

"यह तो अकर्मण्यता होगी सम्राट्, आप जैसे मेधावी पुरुष के लिए !" ह्वेनसांग ने अपनी नुकीली दाढी में उँगलियाँ फेरते हुए कहा। "जिसके सिर पर ताज, उसके सिर में खाज। डर कर आप कर्त्तव्यों से छुटकारा नही पा सकते। भागो नही, दुनिया को बदलो। तभी ससार का उद्धार होगा।"

सम्राट् ने कहा, "भिक्षुवर ! मुझे सोच तो केवल इस बात का है कि आये दिन लूटमार और डाकेजनी की घटनाएँ राज्य में बढ़ती जा रही हैं। जनता पर आतक छा गया है। समझ में नही आता, क्या किया जाये।"

ह्वेनसांग ने कहा, "इसमें घबराने की कोई बात नहीं, सम्राट् ! आप मंत्रिमंडल में परिवर्तन कीजिये। जिसके जिम्मे जनता के जान-माल की रक्षा का काम है, उसे तुरंत पद से हटा कर अपना विश्वासपात्र आदमी नियुक्त कीजिए।" फिर उन्होंने अपने साथ हुई डाकुओं से मुलाकात की चर्चा की। उसे सुनकर सम्राट् को विश्वास हो गया कि प्रेम और अहिंसा से इस संकट पर भी विजय पाई जा सकती है।

जो भी हो, ह्वेनसांग अपनी भारत यात्रा से प्रसन्न था। वह भारत के हर राज्य में घूम चुका था। तभी ह्वेनसांग से बातों ही बातों में सम्राट् हर्षवर्द्धन ने कहा, "भिक्षुवर ! आप चीन देश के रहने वाले हैं। आप ही अपने देश के राजा से मेरे मित्रता के सम्बन्ध कायम करा दें।"

ह्वेनसांग ने प्रसन्न होकर कहा ! "सम्राट् आप चिन्ता न करें। चीन के सम्राट् आप जैसे सुशील हैं। वे भी आप के समान शान्ति-प्रिय ओर अहिंसा-प्रेमी हैं। आपकी मित्रता वे अवश्य स्वीकार करेंगे। मैं अब जल्दी ही अपने देश जाने वाला हूँ। वहाँ पहुँच कर आपका सब काम ठीक करा दूँगा।"

सम्राट् हर्ष सुन कर चौंक पड़े। ह्वेनसांग के चीन वापस जाने की बात से उनका मन दुःखी हो गया। वे दुःख भरे स्वर में ह्वेनसांग से बोले, "भिक्षुवर ! आपका प्रेम मुझे मिला। वह अब छिन जायेगा, ऐसा मैं नहीं सोचता था। आपसे मैंने अनेक बातें सीखीं। मुझे आपकी सलाह से रास्ता मिला; उपदेशों से बल मिला, साहस मिला, शान्ति मिली। अब मैं आपको यहाँ से जाने न दूँगा। आप यहीं रहेंगे, मेरे पास।"

"हाँ, भिक्षुवर ! आप नहीं जायेंगे, यहीं कन्नौज में रहेंगे। हमारा मार्गदर्शन करेंगे।" पीछे से राज्यश्री ने, जो कि चुपचाप खड़ी होकर दोनों का वार्तालाप सुन रही थी, सहसा आगे आते हुए कहा।

राज्यश्री को सामने देख सम्राट् हर्षवर्द्धन चौंक कर बोले, "बहन तुम यहाँ कैसे ? तुम तो अनुप्रिया गई थीं न ? वहाँ से प्रयाग भी जाने वाली थीं। फिर इतनी जल्दी लौट भी आई ?"

"नहीं भैया, मेरा अनुप्रिया जाना न हो सका। केवल प्रयाग से ही लौट आई हूँ। मेले की तैयारी आरम्भ हो चुकी है। भिक्षुवर भी हमारे साथ मेले में जायेंगे। ठीक है न भैया!"

सम्राट् हर्षवर्द्धन कह उठे, "हाँ-हाँ बिल्कुल ठीक ! भिक्षुवर हमें छोड़ कर कहीं नहीं जायेंगे। नहीं तो मैं भी यहाँ न रहूँगा।"

"सम्राट् आप दुःखित न हों, मैं अभी जा ही कहाँ रहा हूँ! अच्छा यह तो बतायें कि आप इस बार प्रयाग के मेले में क्या नई बात करने जा रहे हैं ?" भिक्षु ह्वेनसांग ने सम्राट् हर्षवर्द्धन से पूछा।

राज्यश्री बोलीं, "अब की बार मेला अन्य वर्षों की अपेक्षा काफी बड़े परिमाण में होगा। इस मेले के लिए भैया भी कुछ निर्णय कर चुके हैं।" वह धीरे से मुस्कराईं।

"कैसा निर्णय ?" ह्वेनसांग ने आश्चर्य से पूछा।

"भिक्षुवर ! प्रयाग में होने वाला मेला इस बार पहले मेलों से भिन्न होगा। इस मेले में मैं अपना सब-कुछ दान करूँगा। बहन राज्यश्री के सामने की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार संन्यासी बनूँगा। लेकिन आप तो जा रहे हैं। आप ही बताइये किसके साथ काटूँगा संन्यास के वे दिन ?" कहते-कहते सम्राट् का गला भर आया और वे चुप हो रहे।

ह्वेनसांग ने उन्हें धीरज देकर कहा, "सम्राट् ! मैं आपके साथ रहूँगा। आप चिन्ता न करें। युद्ध पर होने वाले भारी खर्च को आप इस बार भूखी-नंगी जनता में बाँट दें। सारे संसार के सामने यह एक नया काम होगा। इससे ही मनुष्य की सच्ची सेवा होगी। यह भारत के लिये गर्व करने की बात है। इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?"

"युद्धों और सेना पर होने वाला अपार व्यय यदि मानव जाति की सेवा और उन्नति पर किया जाये तो धरती स्वर्ग बन जाये। देवताओं का निवास स्थान यहीं हो। स्वर्ग के सुख को सब भूल जायें, भिक्षुवर !" सम्राट् हर्षवर्द्धन ने गम्भीर होते हुए कहा।

सुन कर ह्वेनसांग गद्गद् हो गये। फिर बोले, "मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। प्रयाग के मेले में अवश्य उपस्थित होऊँगा। इसलिए कल ही चला जाऊँगा, ताकि जल्दी वापस आ सकूँ।"

और दूसरे ही दिन भिक्षुवर चीन देश जाने के लिये तैयार हो गये। सम्राट् हर्ष ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गले मिल कर उन्हें विदा दी और उनसे जल्दी ही लौट आने का वचन लिया।



को भी दान में देने लगे। सम्राट् अपने वहुमूल्य गहने, राजसी पोशाक आदि सव-कुछ दान कर चुके थे। उनके शरीर पर अव केवल एक वस्त्र शेष रह गया था, इसलिए इस प्रकार के दान वन्द करने की घोषणा की जा चुकी थी। इतने में एक भिखारिन जो अधनंगी थी, आयी और वस्त्र की भीख माँगने लगी। सम्राट् के खजांची ने उसको फटकारते हुए कहा, "चल हट यहाँ से ! अव कोई दान-वान नहीं मिलेगा। महाराज के पास देने के लिए अव कुछ नहीं रहा। वे सव-कुछ दे चुके हैं। तू अव सोते से जागी है ! पहले आने को क्या हो गया था ?"

भिखारिन आँखें नीची करके वोली, "मुझे पता ही अभी यहाँ आने पर लगा है। अगर पहले पता होता तो अव तक ले भी जाती। पेट में कई दिन से अन्न नहीं है। अगर दिला दो तो कृपा होगी। मन आपको लाख दुआएँ देगा।"

खजांची कड़क कर वोला, "जाती है या संतरी से धक्के मार कर निकलवा दूँ ! वड़ी आई दुआ देने वाली। चल भाग यहाँ से ?"

सहसा हर्षवर्द्धन के कानों में फटकारने की आवाज़ पड़ी। उन्होंने खजांची से कहा, "भिखारिन को आने दो। उसे कुछ न कहो।"

भिखारिन सकुचाते हुए आई। उसका सारा शरीर भूख के मारे कमज़ोर पड़ गया था। शरीर पर फटे चिथड़े लदे होने के कारण उसका वुरा हाल था। सम्राट् ने उसे देखा और पसीज कर कहा, "पगली तू कहाँ थी ? तूने तो, मालूम होता है कई दिन से भोजन भी नहीं किया है। अव सव दान वन्द हो चुका है। तू तव से न जाने कहाँ थी ? खैर, ले यह मेरा वस्त्र और जाकर अपना तन ढक।"



इतना कह कर सम्राट् हर्षवर्द्धन ने राज्यश्री से एक पुराना वस्त्र भिक्षा में माँग कर स्वयं पहना और भिखारिन को अपना वस्त्र दान कर दिया। भिखारिन दुआ देती हुई जाने लगी, तभी सम्राट् ने उसे रोक कर कहा, "ज़रा ठहर, खाने के लिए भी कुछ लेती जा।"

उन्होंने अपने लिये थोड़े से मीठे चावल रखे थे, वह सारे के सारे तश्तरी समेत उसके सामने रख कर बोले, "इनसे कुछ देर के लिए पेट की आग शान्त हो जायेगी। इसी से सन्तोष कर ले। यही सबसे बड़ा धन है। इसके अलावा मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं बचा।"

भिखारिन खुशी-खुशी चली गई। उसके जाने के बाद सम्राट् हर्षवर्द्धन ने राज्यश्री से कहा, "बहन! यह संसार है। यहाँ का तमाशा देखा कितना विचित्र है? मनुष्य की कीमत घटती जा रही है और धन ही सब-कुछ हो गया है। इनसानियत को कोई नहीं पूछता।"

"हाँ, भैया! इसीलिये संसार को विचित्रता की खान कहा गया है।" राज्यश्री ने गम्भीर होकर कहा।

सम्राट् हर्ष बोले, "बहन, आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। संसार से भी मुझे कोई मोह नहीं रह गया है। आओ हम दोनों चलकर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लें।"

पैरों के पास गिरा। वार खाली गया था। सम्राट् बाल-बाल बच गए थे। वह कटार देखते ही हँस कर रुके। तुरन्त अपना सीना खोल कर खड़े हो गए और कह उठे, "प्रभु के लिए आज यह शरीर भी दान है। जिसको भी मुझ से दुश्मनी है, वह हिम्मत से आगे बढ़कर कटार से मेरे प्राण ले ले। मैं कुछ न कहूँगा।"

सम्राट् यह सब कह ही रहे थे कि उनके चारों ओर लगी भीड़ में एक शोर सुनाई पड़ा। सभी ने देखा कि सेनापति भण्डि और सिंहनाद एक तिलकधारी ब्राह्मण को पकड़े हुए चले आ रहे हैं।

दोनों सेनापतियों ने उस ब्राह्मण को सम्राट् के चरणों में लाकर डाल दिया और उत्साह के साथ कहा, "महाराज! यही वह आदमी है, जिसने मेले में आग लगवाने और आपकी जान लेने की कोशिश की है।"

सम्राट् ने अपराधी को देखा और अपराधी ने झुके सिर से सम्राट् को। इसी बीच में ह्वेनसांग ने कहा, "सम्राट्, यह बेचारा नासमझ मालूम पड़ता है। इसे भी आज क्षमा दान मिले।"

राज्यश्री ने ह्वेनसांग की बात का समर्थन किया। सम्राट् ने कुछ बोलने से पहले खड़ी भीड़ की ओर देखा। कहीं भी उन्हें ह्वेनसांग की बात का विरोध नजर नहीं आया। उन्होंने अपराधी को क्षमा प्रदान करते हुए कहा, "जाओ, आज सर्वस्व दान के इस पुण्य अवसर पर तुझे भी क्षमा करता हूँ। फिर ऐसा काम न करना।"

अपराधी छोड़ दिया गया और वह तुरन्त भीड़ में खो गया। भीड़ ने सम्राट् हर्षवर्द्धन के इस न्याय पर प्रसन्नता प्रकट की।



इसी अवसर पर राज्यश्री ने कहा, "भैया आप अभी सिंहासन न छोड़ें। देश को अभी आपके नेतृत्व की जरूरत है। उसकी हालत में सुधार होने पर ही आप भिक्षु बनने का विचार करें।"

उपस्थित जन-समूह ने भी सम्राट् से यही कहा। यात्री ह्वेनसांग ने भी प्रसन्न होकर इसी बात को दोहराया। अन्त में सम्राट् हर्षवर्द्धन को सब की बात माननी पड़ी। वे मुस्कराते हुए एक ओर चले गए। लोगों ने हर्षध्वनि की—"सम्राट् हर्षवर्द्धन की जय! दानवीर की जय!! शान्ति-अहिंसा की जय!!!"

प्रेरणादायक, सुरुचिपूर्ण एवं रोचक साहित्य

बाल-उपन्यास

१. सोरों का सन्त (यूनेस्को द्वारा पुरस्कृत)	रामकृष्ण शर्मा	२·००
२. हीरे की अँगूठी	योगराज थानी	२·००
३. माँ की ममता	योगराज थानी	२·००
४. वटुक वहादुर	रामकृष्ण शर्मा	२·००
५. चले चन्दा के देश	शंकर वाम	२ ००
६. सम्राट् हर्ष	शंकर वाम	२·००
७. सम्राट् ललितादित्य	शंकर वाम	२·००
८. भगीरथ की वेटी	देवदत्त अटल	२·००

जीवन-साहित्य

१. जय जवान	धर्मपाल शास्त्री	भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत	१·५०
२. प्रेरक प्रसंग	रामकृष्ण शर्मा		१·५०
३. जंगल में खुशहाली नाचे	शंकर वाम		१·५०
४. हमारे रक्तदीप	श्री व्यथित हृदय		२·००
५. शहीद जो देवता वन गए I	श्री व्यथित हृदय		२·००
६. शहीद जो देवता वन गए II	श्री व्यथित हृदय		२·००
७. वोलते खून की कहानियाँ	श्री व्यथित हृदय		२·००
८. भारतीय युग निर्माता	सत्यपाल गुप्त		३·५०

जीवनोपयोगी-साहित्य

९. अणु युग का नया सवेरा	डॉ० अरुण रश्मि	२·५०
१०. खाद्य मोर्चा हम ही जीतेंगे	आशा रानी वोहरा	२·५०
११. अपना विकास आप कीजिए	श्यामकपूर	